3

मामुलिया

सृजन और आलोचना का प्रमुख त्रैमासिक

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन

एक प्रति : चार रुपया

वार्षिक सहयोग : पन्द्रह रुपया

अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, संवत २०३८, अंक ३

अगला अंक : फाग विशेषांक

- **शोधपूर्ण लेख—**
  फाग का उद्भव और विकास, ईसुरी के पूर्व का समकालीन फागकाव्य, ईसुरी के बाद का फागकाव्य, फागों के फड़, फागों में बुंदेली संस्कृति, फागकाव्य का शिल्प-सौंदर्य, फागों की भाषा, फाग-नृत्य और अन्य महत्वपूर्ण लेख।

- **मनभावन कविताएँ—**
  प्राचीन फागकारों-ईसुरी, गंगाधर, ख्याली, मनभावन, द्विज दुर्गा, दुर्गागिरि आदि की अप्रकाशित फागों का स्तबक। उपेक्षित फागकवियों की दुर्लभ फागगीतियों का संकलन।

  माखनलाल चतुर्वेदी के दो फागगीत। आधुनिक कवियों की फाग-रचनाएं।

- **कहानियां और व्यंग्य—**
  फाग की रंग-बिरंगी पिचकारियों से रंगी हिन्दी-बुंदेली की मनचली कहानियाँ और छैला व्यंग्य।

- **विशिष्ट सामग्री और सभी विशिष्ट स्तम्भ—**
  बुंदेली परिचर्चा, संस्मरण, लघुकथाएँ के साथ-साथ 'शब्द बोलते हैं' में फागों में प्रयुक्त शब्द, 'पाठनिर्धारण' में फागों का पाठ-निर्धारण, 'अनूदित' में फागों का अनुवाद, 'अज्ञात कृति' में हस्तलिखित फागकृति आदि।

●

विद्वान लेखकों और साहित्यकारों से सहयोग का आग्रह हैं। फागकार पुरानी और नयी फागें भेजकर फागकाव्य को समृद्ध बनायें।

●

इस ऐतिहासिक अंक की प्रति सुरक्षित करवाने के लिये अभी से सम्पर्क करें।

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा प्रकाशित
एवं इलाहाबाद प्रेस, रानी मंडी, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित।

मामुलिया

• सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त • सहसम्पादक : डा० वीरेन्द्र 'निर्झर' • सम्पादन सहयोग : डा० कृष्णकुमार हूँका, सुरेन्द्र शर्मा, आशाराम त्रिपाठी • समाचार सम्पादन : श्री वीरेन्द्र शर्मा कौशिक

स्तम्भ/विविध

निवेदन : सहयोग

- मामुलिया में प्रकाशनार्थ प्रेषित रचनायें फुलस्केप साइज के कागज पर एक तरफ सुलिखित या टंकित अवश्य हों। स्तरीय और उपयोगी रचनाओं की स्वीकृति-सूचना यथासमय स्वतः भेज दी जायेगी। रचनाओं के उदार सहयोग का आपसे अनुरोध है।
- बुन्देलखण्ड के प्रत्येक उदारमना नागरिक, पाठक एवं विद्वान साहित्यकार के पास चाहकर भी पहुँच सकना सम्भव नहीं है और आप यह जानते ही है कि बिना आर्थिक सहयोग के पत्रिका का प्रकाशन कठिन है। अतः बुन्देलखण्ड की संस्कृति, साहित्य और कला को प्रकाश में लाने के लिए कम से कम पत्रिका के वार्षिक शुल्क पंद्रह रुपये मात्र का त्याग तो अनिवार्यता अपेक्षित है। अन्य बन्धुओं को भी पुनीत सहयोग हेतु प्रेरित करें।
- पत्रिका का प्रत्येक अंक डाक प्रमाणान्तर्गत प्रेषित किया जाता है, अतएव प्रति न प्राप्त होने पर डाकघर से संपर्क करें। यदि आप रजिस्ट्री से मंगाना चाहते हैं तो कृपया डाक व्यय अलग से भेजें।

सम्पर्क सूत्र :

- **सम्पादकीय :** डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुक्लाना मुहाल, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०
- **व्यवस्थापकीय :** बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, शुक्लाना, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०
- **अर्थ-प्राप्ति :** महेश चौरसिया, १६२, शुक्लाना, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०

अपने मन मानिक के लानें / सुगर जौहरी चानें

पाण्डुलिपियों का अनमोल खजाना

एक बार एक मित्र ने बताया कि उस गांव में एक सेठ के पास हस्तलिखित पोथियाँ हैं। मैं उनको लेकर उन सज्जन के घर पहुँचा, किन्तु वे मुकर गये। मुझे एक धक्का-सा लगा। बातचीत के दौरान मैंने मन में तै कर लिया कि पूरे गांव का चक्कर लगाया जाय, शायद कुछ हाथ लगे। आप आश्चर्य करेंगे कि हर घर में कुछ न कुछ था। पूरा गांव पाण्डुलिपियों का एक खजाना। ऐसे कितने घर-गाँव होंगे इस पथरीले प्रदेश में। लेकिन हालत यह है कि एक तरफ कुछ सेठ उन्हें अपनी तिजोरियों में बन्द किये हैं और सौदेबाजी के फेर में रहते है, जबकि दूसरी तरफ कुछ साहित्य-सेवी उस खजाने को खाली करते रहते हैं। महाकवि बिहारी ने 'सावधान के बटपरा, ये जागत के चोर' तो बरजोर नेत्रों के लिये कहा था, पर इन बरजोर प्रेमियों के लिये क्या कहा जाय। कुछ भी हो, धीरे-धीरे खजाने खाली होते जा रहे हैं और स्थिति गम्भीर हो गयी है।

आज कैसे पता चले कि खजाने का कौन-सा हीरा कहाँ गया। कुछ हीरे तो हमेशा के लिये दफन हो गये। न जाने उनमें कितने तुलसी थे और कितने केशव-बिहारी। फिर क्या हो? क्यों न हम ऐसे कदम उठायें कि इस प्रदेश की यह कीमती सम्पदा यहीं रहे। पहले तो हम उदार दाताओं से आग्रह करते हैं कि वे पात्र को पहचानें। दूसरे, खजाने की मालिकों से हमारी अपील है कि वे हस्तलिखित ग्रंथों का व्यापार कर इस प्रदेश की आत्मा न बेचें। तीसरे, हम सभी दाताओं, मालिकों और साहित्य-सेवियों को आमंत्रित करते हैं कि अपने हस्तलिखित ग्रंथों, प्राचीन पत्रों, सनदों आदि की सूचना अकादमी को भेजें, जिसे अकादमी प्रकाशित करेगी। यदि वे उदारतापूर्वक अकादमी को प्रदान करते हैं, तो यह संस्था उनकी सुरक्षा का पूरा दायित्व लेगी और उनके प्रकाशन की व्यवस्था करेगी।

कवि-सम्मेलनों की बहार का मौसम

इन दिनों कवि-सम्मेलनों का एक मौसम रहा और आमतौर पर एक चहल-पहल सी बनी रही। आम-आदमी कविता से कितना जुड़ा है, इसका अन्दाज इस बात से लगाया जा सकता है कि इन सम्मेलनों में एक अच्छी खासी भीड़ रही। बावजूद इस सत्य के कि कवियों ने अपने भाव काफी बढ़ा रखे हैं, सम्मेलनों की संख्या में कोई कमी नहीं आई है। साफ है कि कविता आज भी बहुत असर रखती है, भले ही श्रोताओं की दृष्टि में कुछ अन्तर आ गया हो और वे उसे अपने मनोरंजन की चीज समझने लगे हों। लेकिन इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस माहौल में कवि को अपना दायित्व समझना जरूरी है। ये सम्मेलन असफल तब होते हैं, जब कविगण उन्हें प्रभावित नहीं कर पाते। अगर गहराई से सोचा जाय, तो कम से कम पांच हजार रुपयों का एक सम्मेलन और उसे सुनने के लिये चार-पांच हजार आदमी, रुचि और जिज्ञासा का अनोखा वातावरण, देश के जाने-माने कविगण; फिर भी असफलता। आखिर क्यों? इसका जिम्मेदार कौन है? वास्तव में हर भागीदार को आत्म-विश्लेषण करना चाहिए। जरूरत है सम्मेलनों को नया मोड़ देने की और उसकी सबसे ज्यादा जिम्मेदारी है कवियों की। बुन्देलखण्ड के अखाड़ों और गोष्ठियों की परम्परा में उन्हें फिर उठाने की आवश्यकता है और यह तभी संभव है, जब इस प्रदेश का रचनाकार एकजुट होकर आगे आये।

रचनाधर्मिता और प्रकाशन के संबंधों का सवाल

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहासकार इस तथ्य को नहीं नकार सकता कि मध्ययुग तक के लम्बे समय में बुन्देलीभाषी प्रदेश ने हजारों ग्रंथ दिये हैं, जिनसे साहित्य की हर दिशा जगमगायी है। उस काल में, जब प्रकाशन का कोई साधन नहीं था। ऐसा लगता है कि वह रचनाधर्मिता का अनोखा युग था। लेकिन आज प्रकाशन की इस प्रगति में इस प्रदेश का कोई खास स्थान नहीं है, आखिर क्यों? क्या रचनाधर्मिता में कोई कमी है? इस प्रदेश के कवियों और विद्वानों के न जाने कितने ग्रंथ अप्रकाशित पड़े हैं, न जाने कितने शोध-ग्रंथ बराबर प्रतीक्षारत हैं। इसकी गणना यह सिद्ध करती है कि रचनाकार अब भी जुटे हैं, पर प्रकाशन की कोई व्यवस्था नहीं। इतने विस्तृत प्रदेश में कोई भी ऐसा प्रकाशन-संस्थान नहीं, जो पुरानी और नयी पाण्डुलिपियों को प्रकाश में ला सके। फिर सवाल उठता है कि क्या किया जाय और उसका उत्तर भी स्पष्ट है कि या तो कोई उदारमना व्यवसायी साहस करे या सारे रचनाकार एकसाथ मिलकर खड़े हो जाएं। यदि प्रदेश का हर रचनाकार केवल एकबार सौ-दो सौ रुपयों का त्याग करे, तो कोई भी संस्था प्रकाशन की दिशा में बढ़ सकती है। हम कम से कम एक बार ही तटस्थ होकर सोचें और एक प्रयास करें।

आकाशवाणी और धरतीवाणी

बुन्देली संस्कृति, साहित्य और कला को प्रकाश में लाने का एक माध्यम है आकाशवाणी और खुशी की बात है कि इस क्षेत्र में जबलपुर, ग्वालियर और छतरपुर तीन केन्द्र हैं। छतरपुर केन्द्र का प्रमुख उद्देश्य संभवतः यही था कि इस क्षेत्र की बुन्देली भाषा, साहित्य, कला, संस्कृति आदि को वाणी मिले और उसको पूरा करने के लिये उसने दो-चार कदम भी रखे थे। लेकिन अब कुछ लोग शिकायत सी करने लगे हैं, उलाहना-सा देते हैं कि बुन्देली कहानी, लोककथा, निबन्ध या वार्ता आदि जैसे कार्यक्रम से ही निष्कासित कर दिये गये हैं। केवल लोकगीत ही सुनाई पड़ते है और कभी-कभी वे भी नई धुनों और नये बाजों के साथ। यहां तक कि कवियों की नयी कविताओं को भी लोकगीत की संज्ञा से आभूषित करने में कोई हिचक नहीं होती। और भी न जाने क्या-क्या सुनने में आता है। इन बातों की तरफ ध्यान आकर्षित करने के लिये कुछ लोग जाते होंगे, संस्था का प्रतिनिधि-मण्डल भी गया होगा; फिर भी स्थिति ज्यों की त्यों है। सवाल उठता है कि दोषी कौन है। दोषी कोई नहीं है, साफ है कि धरतीवाणी और आकाशवाणी में अन्तर होना ही चाहिये क्योंकि धरती और आकाश में बहुत फासला है।

अजमेरी जन्म-शताब्दी समारोह

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और जाने-माने उपन्यासकार वृन्दाबनलाल वर्मा की पीढ़ी के मुंशी अजमेरी का यह जन्म शताब्दी वर्ष है, जिसके उपलक्ष्य में उनकी जन्मभूमि चिरगांव में एक साहित्यिक समारोह का आयोजन हुआ है। राजनेताओं, साहित्यकारों और नागरिकों ने अपनी श्रद्धांजलि तो अर्पित की लेकिन दुख की बात यह है कि पं० बनारसी दास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित कवि के ग्रंथ 'प्रेम-पयोनिधि' का विमोचन नहीं हो सका। वस्तुतः अजमेरी जी के अप्रकाशित ग्रंथों का प्रकाशन इसी जन्मशती-वर्ष में हो जाना चाहिये, यही उस महान आत्मा के लिये सच्ची श्रद्धांजलि होगी। हम भले ही समारोह न करें, कवि-सम्मेलन और संगीत-सम्मेलन जैसे उत्सवों में न पड़ें, पर अप्रकाशित रचनाओं का प्रकाशन हमारा दायित्व है जिसका निर्वाह हमें कर्तव्य का अंग मानकर करना है।

बुंदेली परिषद : टिप्पणी पर टिप्पणी

पत्रिका के दूसरे अंक के सम्पादकीय में बुंदेखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की बुंदेली परिषद पर एक टिप्पणी प्रकाशित हुई थी. जिसमें यह बिल्कुल स्पष्ट था कि बुंदेली परिषद जैसी विश्वविद्यालयीन स्तर की समृद्ध संस्था को 'बेतवा-वाणी' के प्रकाशन के अलावा कुछ और करना चाहिये। कम से कम बुंदेली लोकभाषा और उसके साहित्य का हित-साधन उसकी गरिमा के अनुरूप है। इस साफगोई के बावजूद परिषद के अध्यक्ष और जाने-माने विद्वान श्रीं कृष्णा-नंद गुप्त ने उसमें कोई स्पष्टता नहीं पायी, इस कारण मजबूरन कुछ साफ करना पड़ रहा है और वह भी सभी बंदेली में रुचि रखने वालों की तरफ से। पहली बात यह है कि परिषद को प्रकाशन-कार्य हाथ में लेना चाहिए ताकि पुरानी पाण्डुलिपियाँ प्रकाश में आ सकें और नयी कृतियां अपनी सार्थकता पा सकें। इसके लिये यह भी जरूरी है कि ऐसे नियम बनें जो सभी के साथ न्याय कर सकें। अच्छा यह हो कि पहले लोककथाओं, लोकगाथाओं आदि के संकलन प्रकाशित किये जायँ, फिर प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों को। एक जुट होकर कोई भी अच्छी उपयोगी योजन बनायी जा सकती है, परन्तु उसके संयोजन और कार्यान्वियन के लिये परिषद को व्यापक बनाना होगा। अस्तु दूसरी आवश्यकता है परिषद के व्यापकत्व की ओर इस क्षेत्र के विद्वानों को भागीदार बनाने की (उसके विधान में किसी तरह के हस्तक्षेत्र की जरा भी मंसा नहीं)। बुंदेलीभाषी क्षेत्र काफी बड़ा है और उसे दृष्टि में रखना अनिवार्य है। तीसरे परिषद एक गारिमामयी संस्था है, अतएव उसमें किसी तरह की दलबन्दी अवांछनीय है। साथ ही उसे किसी संस्था में विलीन करना या उसे किसी तरह की चोट पहुँचाना पूरे क्षेत्र के लिये अहितकर सिद्ध होगा। अधिक क्या, परिषद के अध्यक्ष महोदय एवं विश्वविद्यालय के विद्वान कुलपति स्वयं लोक की नाड़ी पहचानने में समर्थ पंडित हैं।

मामुलिया : नाम के औचित्य की चर्चा

हिन्दी के एक नामी पंडित ने आखिर पूछ ही लिया कि मामुलिया क्या है और उन सज्जन ने 'मामुलिया' की कथा खोलकर रख दी। लोकसंस्कृति और कोकसाहित्य के दावेदार एक विद्वान ने भी नाम औचित्य पर एक खरी टिप्पणी कर डाली। एक विद्वान मित्र ने 'मामूली' से 'मामुलिया, का सम्बन्ध ही स्थापित कर दिया और एक कथा गढ़ ली। बहरहाल भूली-बिसरी 'मामुलिया' की खूब चर्चा हुई। यहाँ तक कि लोगों ने 'मामुलिया' पर खोजपूर्ण सामग्री के लिये आग्रह रखे। उनकी जिज्ञासा की तुष्टि होगी ही और उसके साथ औचित्य की पुष्टि भी। पर यहाँ यह बताने में कोई हर्ज नहीं कि आम आदमी

ने (कम से कम ९५ प्रतिशत) इस नाम को खूब सराहा, यहाँ तक कि उससे एक अपनापा व्यक्त किया।

अब रही नाम की सार्थकना की बात, तो उसका संकेत पत्रिका के प्रथम अंक में किया गया था, भले ही उस पर किसी का ध्यान न गया हो। बुंदेली-भाषी क्षेत्र में मामुलिया के महबुलिया, प्योरइया आदि नाम भी प्रचलित हैं। 'महबुलिया' शब्द सम्भवतः मह=महा, महत् अथवा महत्त, आनन्द, उत्सव (सं० महस,) + बुलिया=बोल, बोलने वाली से बना हो और उसका अर्थ महा या आनन्द के बोल बोलने वाली हो। वैसे बुंदेली का 'बुलयात' 'बुलया रई' शब्द विनोद, विनोद करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, लेकिन आजकल वह, मजाक करने के लिये ही व्यवहृत किया जा रहा है। इस रूप में 'महबुलिया' महाविनोद या महत्वपूर्ण खेल क अर्थ देता है। 'प्योरश्या' का अर्थ प्यो=प्रिय-तम, पति+रई=अनुरक्त, पगी हुई अर्थात् प्रियतम में अनुरक्त रहने वाली लगाया जा सकता है। अब रह जाता है 'मामुलिया'। यह सम्भव है कि वह 'महबुलिया' से रूपांतरित हुआ हो अथवा यह या महा से 'मा' और प्राकृत मुल्लिअ (मूल्य), मूलिय (मूल) में 'मुलिया' बना हो, जिसका अर्थ आनन्द या उत्सव का मूल्य या मूल तत्व रखने वाली होता है। बहरहाल यह सब तो भाषाविद् जानें, किन्तु 'मामुलिया' इस क्षेत्र का विशिष्ट खेल है और बुंदेलखण्ड के अधिकांश भागों में 'मामुलिया' नाम बहुप्रचलित है।

'मामुलिया' बुंदेली संस्कृति का एक प्रतीक है। बेर के झकरा के कांटे यदि दुख या विपत्तियों का सांकेतिक अर्थ देते हैं, तो उनमें सजे–सँवरे हँसते फूल सुख या आनंद का। इससे जीवन की दुख-सुख-मय इकाई का मान आसानी से हो जाता है और यह पत्रिका भी आदमी के दुख-सुख की भागीदार हैं। यह पत्रिका वह कांटों वाला झकरा है (दुख और करुणा भरा श्रम), जिस में जीवन के नाना भाव-पुष्प गुंथे हैं। पत्रिका की रचनाएं विविध पुष्प हैं और पत्रिका उन्हें एकता में बांधकर एक गुलदस्ता-सा सार्थक बनाती है। कुछ भी समझें, 'मामुलिया' खेल की जितनी सार्थकता है, उतनी ही इस 'मामुलिया' की। केवल उसे देखने के लिए प्यारभरा चितवन चाहिए। कम से कम 'एकई बेर नजर भर हेरो, मन भर जावै मेरो।'

—सम्पादक

परख-परखाव

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपकी टिप्पणियाँ आमंत्रित हैं, इस आग्रह के साथ कि उन्हें अलग से (पत्र के साथ नहीं) टंकित या सुलिखित रूप में भेजने का कष्ट करें।]

अपनी बोली की किताब

भइया, दिवारी और भइया दोज की मुतकी प्रेम-प्रीति मंजूर करो। भगवान तुम सव खों खूब बरक्कत दे और तुम सबके दाँतन बुन्देलखण्डी बोली खूबई पनपै, फूलै-फरै, जाइ परभू सें बिन्ती है। चिठिया पढ़कें अचरज जरूर हूहे कै बिना कहे— बोले मैंने काये पैलें सें लिखी। छतरपुर सें हमार रिस्तेदार और हमाओ हरहमेस भलो चानवारे डाक्टर शक्तिप्रसाद सुकुल नें दो मामुलिया भेज दईं, मैंने मँगाई हतीं। प्रातई सें पढ़बो सुरू करो और दोई सुरू सें लैकें अखीर लों पढ़ डारीं। भौतई खुसी भई औ लगो कै भलांइ मोखों कोउ न जानत होय, मैं तो अपने हिरदे की खुसी लिखबे में हिचक न कर हों। बस, जोइ कारन है जौन सें जा पाती लिख डारी। बुरो न मानिओ भाइया, जबलपुर की बोली में बा मिठास, बा लचक औ बा सलौनोपन नइयाँ जो छतरपुर, झाँसी, लत्ततपुर में मिलत है, तऊ थोरे भौत फरक सें जबलपुरवारे भी ओइ बोली बोलत हैं भइया। कहानत तो हैई कै हर पांच कोस पै बोली में फरक होन लागत है।

का करनै इन सब बातन सें, हमें तो मामुलिया की बात करनै है। पढ़कें जी जुरा गओ और ऐसो लागो कै जौन काम हम सबनें चालीस बरस पैलें 'प्रहरी' में एक पन्ना 'तुमाई बोली में तुमाई बात' में सुरू करो हतो, बो मामुलिया सें पूरो होकें रेहै। हमें अपनी बोली की किताब चाहनें हती और बा मामुलिया देखकें मिली। मामुलिया चन्दा की चांदनी घाईं दिन दूनी परमा सें पूनों घाईं चगकै और बुन्देलखंडी को भलो करै, बस इत्तइ हम सब चाहत हैं।

—रामेश्वर प्रसाद गुरु, गुजराती कालोनी, चेरीताल, जबलपुर

उपयोगी सामग्री

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के सम्बन्ध में इसमें बहुत उपयोगी सामग्री आपने प्रकाशित की है। ऐसे पत्र की वास्तव में बहुत आवश्यकता है।

——राजेन्द्र अवस्थी, सम्पादक, कादम्बनी, नई दिल्ली

हिन्दी जगत में खास पहचान

मामुलिया का दूसरा अंक मिला, इसमें पत्रिका और निखरी है। आपका यह उद्यम जारी रहा, तो पत्रिका निश्चय ही हिन्दी जगत् में अपनी खास पहचान बनायेगी, और अपनी छाप भी छोड़ेगी। मिराशी जी का लेख छाप कर आपने अध्येताओं का उपकार किया है।

—डा० राधावल्लभ त्रिपाठी, रीडर, सागर विश्वविद्यालय,

शोध-पत्रिका के अभाव की पूर्ति

मामुलिया का अंक दो देखा। ऐसी शोधपत्रिका की महती आवश्यकता थी, जो इस क्षेत्र के इतिहास, पुरातत्व, कला, साहित्य आदि से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी कराये। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उत्तर भारत के सर्वाधिक सम्पन्न भूभाग में अभी अनेक रत्न छिपे हुए हैं, जिन्हें खोजना शेष हैं। कुछ कार्य विगत वर्षों में हुआ है और चल भी रहा है, पर इन सब की जानकारी सभी जिज्ञासुओं को नहीं हो पा रही है। इस अभाव की पूर्ति इस त्रैमासिक पत्रिका 'मामुलिया' के द्वारा सम्भव हो सकेगी।

—डा० एस० डी० त्रिवेदी, निदेशक, राजकीय संग्रहालय, झांसी,

सुन्दर कीर्तिमान की स्थापना

मामुलिया का दूसरा अंक पढ़कर बड़ा सुख मिला। यही स्थिति बनी रही, तो पत्रिका बहुत शीघ्र हिन्दी जगत की पत्रकारिता में अपना विशिष्ट स्थान बना लेगी। 'मधुकर' और 'लोकवार्ता' के बाद का दीर्घकालीन सन्नाटा तोड़ कर अपने दो अंकों से ही 'मामुलिया' ने एक सुन्दर कीर्तिमान स्थापित कर लिया है। इस साहसपूर्ण सत्कार्य के लिये आपको जितना भी साधुवाद दिया जाय, कम है।

इस अंक में 'कालपी में प्राचीन रंगशाला की खोज', 'बुंदेलखण्ड में परिहार', 'बुन्देली लोकसंगीत' तथा 'प्राचीन बुन्देली गद्य' लेख मुझे बहुत ही पसंद आये। अत्यंत मूल्यवान जानकारी देने के लिये बुन्देलखण्ड की भूमि श्रद्धेय मिराशीजी की ऋणी रहेगी। दीवन प्रतिपाल सिंह जी के इतिहास की सामग्री का प्रकाशन तो पत्रिका में निरंतर चालू रखना चाहिए। उनके इस अंश को पढ़

कर मुझे राठ के इतिहास से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण संकेत प्राप्त हुए हैं।

मानक हिन्दी की जो कविताएँ छपी हैं, उनमें मेरा मन नहीं रमा। 'मामुलिया' के स्तबक में यह सामग्री मुझे उखड़ी-उखड़ी-सी (जबरजस्ती को ठेंगा-सी) प्रतीत हुई। खैर, यह मेरी अपनी रुचि, है आपके चयन के पीछे कुछ अर्थपूर्ण उद्देश्य होगा। कहानियाँ या तो ठेठ बुन्देली में हों या फिर—मानक हिन्दी में होने पर—बुन्देलखण्ड के इतिहास, लोकसंस्कृति और जनजीवन से सम्बद्ध, तो उनका प्रकाशन अधिक सार्थक होगा।

—डा० हरगोविन्द सिंह, हिन्दी विभाग, ब्रह्मानन्द महाविद्यालय,
राठ (हमीपुर) उ० प्र०

आन्दोलनों से परे विशिष्ट पत्रिका

पहली की तरह दूसरी भी मन भा गई। 'कालपी में प्राचीन रंगशाला की खोज' महत्वपूर्ण लेख गया, इस शोधपत्र की उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्वरलिपि सहित श्री प्यारेलाल श्रीमाल का लेख भी काम का है। ऐसे ही और लेख दें, जिनमें बुन्देली लोकसंगीत स्वर-लिपि सहित हो। कविताओं के चयन में सतर्कता वांछनीय है, शिवू दा, नीलकण्ठ, मनोज और ज्ञानसागर की कविताएँ प्रभाव छोड़ती हैं। मुन्शी अजमेरी 'प्रेम' की शताब्दी का वर्ष है यह। उन्होंने बुन्देलखण्डी भाषा का शब्दकोष लिखा था, जो अप्रकाशित है। यदि 'मामुलिया' उसे प्रति अंक में प्रकाशित कर सके, तो महत्व का कार्य होगा। आन्दोलनों से परे इतनी अच्छी और विशिष्ट पत्रिका के लिये साधुवाद।

—डा० विश्वभावन देवलिया, हिन्दी विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय

संस्कृति, साहित्य और कला के विकास की प्रेरक

पत्रिका में सन्निहित सामग्री बुन्देलखण्ड की संस्कृति, साहित्य और कला के विकास के लिये प्रेरणादायक है। पत्रिका की सामग्री एक ओर रुचिकर है, तो दूसरी ओर स्तरीय। तरफ सामान्य जन के लिये ज्ञानवर्द्धक है, तो दूसरी तरफ शोधछात्रोपयोगी भी। यही नहीं, सामग्री मौलिक एवं संग्रहणीय भी है। सम्पादकीय का अनूठापन बड़ा चित्ताकर्षक लगा। मुद्रण भी उत्कृष्ट एवं आकर्षक है।

—डा० अवधनारायण सिंह, अध्यक्ष, भूगोल विभाग,
महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर,

जीवन के प्रति गम्भीर चिन्ता का भाव

आप लोगों ने अपने प्रयत्न से 'मामुलिया' प्रकाशित कर यह सिद्ध कर दिया है कि कला, साहित्य तथा जीवन के प्रति गम्भीर चिन्ता का भाव उन छोटी पत्रिकाओं के पास रह गया है, जिनके सर पर न तो किसी बड़े एकाधिकारी घराने की छाया है और न ही सरकार का वातानुकूलित पण्डाल।···· 'मामुलिया' जैसी जन-जीवन से पैदा होने वाली पौध खुद छाया बनती है थके-मांदे संघर्षरत आदमी की।···पत्रिका के प्रारम्भिक दो अंकों में प्रकाशित सामग्री यह उम्मीद तो बँधाती है कि भविष्य में 'मामुलिया' मामूली आदमी की ही तरफदारी करेगी—उसे मामूली बनाकर छोड़ देने वालों की नहीं। यह सही बात है कि बुन्देलखण्ड और खासकर छतरपुर के लिये यह गौरव की बात होगी, अगर 'मामुलिया' जनसंघर्षों की जुबान बन सकी। 'सरस्वती', 'हंस', 'सुधा', 'जागरण' और 'विप्लव' की तरह। किन्तु हमें साहित्य को क्षेत्रीयता की सीमा में बाँध देने के खतरे के प्रति सावधान रहना होगा।

—प्रो० प्रमोद कुमार पाण्डेय, २/३ प्रोफेसर्स कालोनी, छतरपुर

बुंदेली साहित्याकाश का चमचमाता सूर्य

बुन्देली से सम्बन्धित इतनी ठोस मार्मिक और शोधपूर्ण जानकारी इसके पूर्व नहीं देखी थी, पत्रिका के इन अंकों में वह पाकर गद्गद् हो गया। मानो प्यासे पपीहा को स्वाति नक्षत्र की बूँद प्राप्त हो गई हो। अंक प्रथम में बुन्देलखण्ड का सीमांकन' (डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त) तथा 'ईसुरी : एक पुनर्मूल्यांकन' (डा० नाथूराम चौरसिया), अंक दो में 'बुन्देली लोकसंगीत' (प्यारेलाल श्रीमाल) बहुत ही प्यारे लगे। 'मामुलिया' को बुन्देली साहित्याकाश का चमचमाता सूर्य कहा जाय, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

मोहरसिंह, आर० एम० एस०, सागर।

महोबा की आल्हा-प्रतियोगता पहली नहीं

आपके द्वारा सम्पादित 'मामुलिया' का दूसरा अंक देखा बहुत सुन्दर है। सामग्री उत्कृष्ट है, सम्पादन श्रेष्ठ है। 'मामुलिया' मामूली नहीं, बल्कि हिन्दी की अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं में सर्वोपरि रखने के योग्य है।

मामुलिया के दूसरे अंक में पृष्ठ ६ और ७ पर 'प्रतियोगिताओं का दौर और दौर की प्रतियोगिता' शीर्षक में सम्पादकीय टिप्पणी है कि महोबा में पं० परमानन्द जी के सम्मान में हुए समारोह में आल्हा-प्रतियोगिता संभवतः पहली बार की गयी है। परन्तु ऐसा नहीं है। सबसे पहले १९७८ ई० में हमारी समिति ने मण्डलीय स्तर पर एक प्रतियोगिता का आयोजन किया था, जो चार दिन चला था। इसका विस्तृत समाचार 'आज' और 'जागरण' (कानपुर)

के २७ सितम्बर १९७८ के अंक में तथा दैनिक स्वतंत्र भारत और नवजीवन (लखनऊ) के अतिरिक्त अन्य दैनिकों और साप्ताहिकों में प्रकाशित हुआ था।

—गिरिजाशंकर शुक्ल, संयोजक, उत्तर प्रदेश आल्हा समिति,
बाराबंकी, उ. प्र.।

'मामुलिया' नाम का अनोखा औचित्य

पत्रिका वह दर्पण साबित हुई, जिसमें सम्पूर्ण बुंदेलखण्ड की कला साहित्य और संस्कृति के दर्शन हुए। सभी स्थायी स्तम्भ अपने आप में पूर्ण तथा अनोखे हैं और 'सम्पादकीय' टिप्पणियाँ तो वास्तव में अनूठी और निराली हैं। नाम के अनुरूप पत्रिका में तरह-तरह के पुष्पों का समावेश है, सभी रचनाएँ स्तरीय हैं। पत्रिका को 'मामुलिया' नाम देकर इस खेल को पुन: जीवित कर अमर कर दिया है—

मामुलिया बिलात जा रई ती, बिटियाँ हतीं सबई हैरान।
कभऊँ सखीं न जुर पाउततीं कभऊँ नै मिल पावै सन्मान॥
जो 'मामुलिया' काढ़ी तुमनें, फिर है अब कुलिया-कुलिया।
मामुलिया के आये लिवउआ, झमक चली मोरी मामुलिया॥

—सुधा रावत 'क्षमा', मामौन गेट, टीकमगढ़।

समस्यापूर्ति का स्तम्भ

'परख-परखाव' के पृ० १५ पर भाई मोतीलाल जी बिलैया, मऊरानीपुर का 'समस्यापूर्ति' स्तम्भ का सुझाव मुझे बहुत प्रिय लगा। आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व समस्यापूर्ति विद्या का बहुत प्रचलन था तब मैं अपने विद्यार्थी-जीवन में था और निरंतर इस काव्यांग द्वारा मासिक पत्रिका 'सुकवि' के माध्यम से रसपान किया करता था। स्वनामधन्य सुकवि 'सनेही' जी ने अनेक काव्यप्रेमी युवकों को काव्य-सृजन की प्रेरणा प्रदान की और नियत समस्या की उत्तम पूर्ति पर उन्हें पुरस्कृत किया। कवि-सम्मेलनों, उत्सवों और विशेष पर्वों पर कोई कठिन समस्या पूर्ति हेतु रखी जाती थी और उनकी पूर्ति में अच्छे-अच्छे कवियों की प्रतिभा की परीक्षा होती थी। अपनी कला में निपुण, इष्ट बलधारी एवं आशु कविगण ही विजयश्री का वरण करते थे।

पृष्ठ ३७ पर कविवर घनश्याम दास जी का महाराज छत्रसाल विषयक एक छंद मेरे विचार से समस्यापूर्ति का एक उदाहरण है क्योंकि कवि ने एक ही समस्या—'तौलि कैं' की पूर्ति में तीन घनाक्षरी छंद लिखे थे। शेष दो छंद पाठकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं—

(१) तत्कालीन ब्रिटिश शासन के न्यायालयों पर एक फबती

बँधु पर धावा करो, फीस पर दावा करो,
असत लिखावा करो, क्यालन में खोल कैं।
दाखिल दलील करो, हारो तो अपील करो,
संग में वकील करो, खेल लो मखोल कैं।
विप्र 'घनश्याम' कहैं, द्रव्य निज नाश करो,
जीतिबे की आश करो, हीय बीच होल कैं।
पाय हो न एक टूक बन्दरी अदालत सों,
खाय जैहैं न्याय की तुला पै तोल-तोल कैं॥

(२) भक्तवत्सल भगवान की सहज उदारता पर लक्ष्मीजी का करारा व्यंग्य—

लक्ष्मी सिखावै निज नाह सों जनावै रोष,
चलहै गृहस्थी किम यैसे डोल डोल कैं।
बोले भगवान अरी नारि तैं अजान, कौन
कीन्हो हम काम जासौं बोलै खोल खोल कैं।
'विप्र घनश्याम' रमा बोली रिसयाय नाथ,
करत उतावली उदारता में होल कैं।
कंपत न नेक देत संपत त्रिलोकी केर,
केरन सों, बेरन सों, तन्दुल सों तोल कैं।

—गोविन्द प्रसाद वर्मा, गाड़ीखाना, छतरपुर

गेंदलीला / कवि प्रेमदास

[कातिक में कृष्णलीला-गीतों के गूंजते स्वर हर गांव-गली में अपनी अनुगूंज पीछे छोड़ते हुए। गेंदलीला का एक लोकगीत वर्षों पहले सुना था, किन्तु वही हस्तलिखित ग्रंथ में मिल गया। अंतर इतना है कि लोकमुख ने उसे संक्षिप्त कर दिया है, कहीं-कहीं थोड़े से परिवर्तन के साथ। सिद्ध है कि कवि की रचना ही लोकानुभूति और लोकाभिव्यक्ति की अनूठी क्षमता के कारण लोक-गीत बन जाती है और उससे कवि की 'छाप' अलग हो जाती है। फिर रचना-कार का पता ही नहीं चलता। प्रस्तुत लीलागीत के रचयिता हैं—कवि प्रेम-दास। अजयगढ़ रियासत के एक ग्राम रामपुरा के निवासी और हरिवंश गहोई वैश्य के सुपुत्र। रचना-काल सं० १८५४ (१७९७ ई०)। कवि की अन्य कृतियां—प्रेमसागर (सं० १८२७), कृष्णलीला, प्रेमपरिचय, बिसातिन लीला, मनमोहन लीला, भगवतबिहार लीला, ठाकुर कौ लीला। इनके कई लीला-गीत आज भी विभिन्न परिवारों और गायिकाओं के झुण्ड में गाये जाते हैं। अतएव उन्हें लीलागीतों का अग्रणी लोककवि माना जा सकता है—सम्पादक]

श्री गनेस जु नमः श्री सरसुती जु नमः।
अथ लिषते गेंदलीला की पोथी श्री कृस्न विहार ॥
जै जै कृस्न कमलदल लोचन दुषमोचन सुषदाई।
जै गुविन्द ब्रजचंद नंद सुत आरति हरन कन्हाई ॥
जै राधा व्रपभान लाड़ली पूरन कर सव साधा।
जे नर आवें सरन तुम्हारी हरौ सबन की बाधा ॥
हिय में राधा माधौ धर कें मन में दुबिध न रापौं।
लीला लला लाड़ली जू की प्रेम सहित कछु भापौं ॥
एक समै हरि गेंद पेलवे श्री बिन्द्राबन माहीं।
जमुना तीर सघन कौं लीनै बंसीवट की छाँहीं ॥
तहां आन निकसी श्री राधे संगै सबै सहेलीं।
जिनकों लष रंभा लाजत है कंचन कैसी वेलीं ॥
देषी गेंद परी मग माहीं राधा तुरत उठाई।
हरि की दिस्ट बचाइ लाड़ली ललता हाँथ गहाई ॥

हेरी गेंद बहुत मन मोहन इत उत कहूँ न पाई।
हंस कें कही सुनौ जू राधे तुमही गेंद चुराई ॥
देइ न गेंद गहाइ लाड़ली कहा करैं तिहि केरौ।
बाबा नंद गुंथ मोये दीनी तातें प्रेम घनेरौ ॥
बोली मुरक राधका जू तब श्री व्रपभान किसोरी।
गिर गइ गेंद कहूँ मनमोहन हमै लगावत चोरी ॥
ढूंड़ लेव तुम गेंद आपनी जहाँ रावरे डारी।
बरबस दोस लगावत हमकौं मोहन कुंजविहारी ॥
ललता कहत सुनौ हो लालन बातन के बनवइया।
झूठौ हमै कलंक लगावत लंगर ढीठ कन्हैया ॥
दुनगत गेंद इतै हम देषी इहाँ आन ठहरानी।
परी गेंद जहँ गिरी रावरे इतही जात बिलानी ॥
राधा सुनियौ बुध अगाधा बाधा हरन हमारी।
बकसौ गेंद जाइ हम पेलैं श्री ब्रपभान दुलारी ॥
नीके देब तौ नीके लैहैं नातर बातें सैहै।
जीकी गेंद गई है प्यारी सो अपनी फिर लैहै ॥
जैसे चोर लालजू तुम हौ ऐसई सबकौं जानौ।
घर घर बात फिरत दध माषन ऊँच नीच नहिं मानौ ॥
कइयक वेर पकर गोपिन नें गालन गुलचा दीने।
तापर लाज न आई तुमकौं फेर काम वे कीने ॥
अैसे काम तुमारे लालन सुनौ नंद केत ढोटा।
फिर फिर आंप दिषावत हमकौं लियें हाँथ में सोटा ॥
ललता कहै सुनौ जसुधा के बातन के चटकीले।
छोड़ देव तुम अंचल मोरौ बड़े कन्हाइ हठीले ॥
भौंह मरोर लाड़ली बोली करकैं नैन तरीछे।
मानत नहीं कही मनमोहन परे हमारे पीछे ॥
या कहकैं तब नंद कन्हइया धरो जाइ तब अंचल।
वेग देव तुम गेंद हमारी एरी गोपी चंचल ॥
कर कर ऊतर लाल गेंद कौ आंन टटोली चोली।
जान परेगी भइयन की सौं कहा कहौं दिल बोली ॥
मुकता माल टोर नंदनंदन घर बहियाँ झझकोरी।
भले काम तुम कीने लालन हौं ब्रषभान किसोरी ॥
डरवायें नईं गेंद छांड़हौं एक गई दो लैहौं।

बेंड़ राषिहौं कुंज कुटी में घर कौं जान न देहौं ।।
कहा करै ब्रषभान हमारो गेंद चुरावत पाई ।
लैंहौं डंड सलौनी तुमसें कर लैहौं मन भाई ।।
ललता कहै कछू नहिं हूहै रइयत आइ बसाई ।
× × ×
निसदिन सेवा करत रहत हैं मोहन पिता तुम्हारे ।
× × ×
पिता हमारे ने तुव पितु कौं अपने पांहि बसाये ।
कब तें जबर भये हैं लालन अैसे बचन सुनाये ।।
ये जसुधा के कुँवर लाड़ले आव हमारे जाने ।
झूठी मीठी जोर लगावत मन में कपट सयाने ।।
देषत तुम्हें बरस बहु बीते भरनन ही इतरानै ।
सेवा करी हमारे पितु की नंद प्रेम सब जानै ।।
बोले बिहंसि तबै ब्रजभूषन दुःषन हरन कन्हाई ।
नंदराइ ब्रषभान राइ की कबै करी सेवकाई ।।
कबै भये हम राइत राधा सुनौ बचन दो मोरे ।
सुरमुन जेते तीन लोक में मोरे चरनन के चेरे ।।
इंद्र आद हैं राइत मोरी सिव बिरंच सब मानै ।
तिनकौं •कहत गोपका राइत कहा गूजरी जानै ।।
बाढ़ी प्रीत उभय उर अंतर लगे नैन सें नैना ।
बातें कहत परसपर दोऊ डग भर भुंम चलै ना ।।
ललता कहत लाड़ली जू सों इत तें जान ना पैहौ ।
ऐसी किस्न मोहनी डारी घर कौ जान न पैहौ ।।
मानौ सषी सिषापन मोरौ गेंद स्याम की दीजै ।
जमना जी में मंजन करकें गवन भवन कौं कीजै ।।
चलियै चलें वेग घर अपने सुन लेव बात हमारी ।
तनक झेल हूहै जो प्यारी तौ बकहै महतारी ।।
हँस कर दीनी गेंद राधका लीजै मदन ,गुपाला ।
हम दासी हैं क्रस्न तुम्हारी सुनियै दीनदयाला ।।
कालिंदी कों चली राधका चितवत फिर फिर •पाछे ।
इहां क्रस्न जू बेलन लागे सषन संग पुन आछे ।।
नंदलाल ब्रषभान लाड़ली सुनियै विनय हमारी ।
क्रपा कटाच्छ मोहि पर कीजै प्रेमदास बलहारी ।। • •

बुंदेलखंड की, मूर्ति कला सम्पदा / प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी

ललित कलाओं के उद्भव तथा विकास की दृष्टि से बुन्देलखण्ड क्षेत्र का भारत में विशेष स्थान है । वास्तुकला, चित्रकला' तथा मूर्तिकला का इस भूभाग में आद्येतिहासिक काल से लेकर मध्यकाल के अंत का अनेक रूपों मे विकास हुआ । इसका प्रमाण वे बहुसंख्यक स्मारक, चित्र तथा मूर्तियां है जो बुन्देलखंड के विभिन्नन स्थानों से प्राप्त हुई हैं ।

जहाँ तक मूर्तियों का सम्बन्ध है, उनका निर्माण इस भूभाग में बड़े रूप में हुआ । उनके लिए इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के पत्थर प्रचुरता से प्राप्त थे । मूर्तियों के बनाने में लाल, भूरे तथा सफेद बलुवे पत्थरों का या ग्रेनाइट पत्थर का प्रयोग किया जाता था । विंध्य पर्वतमाला में ये पत्थर बड़े परिमाण में प्राप्त थे । कलाकारों ने मंदिरों तथा मूर्तियों के निर्माण में लकड़ी, मिट्टी आदि की अपेक्षा पत्थर को अधिक उपयोगी पाया । जो प्राचीन कलावशेष इस समय बुंदेलखंड के अनेक भागों में बिखरे पड़े हैं, उनके निर्माण में स्थानीय पत्थर का प्रयोग किया गया । यह अधिक सुविधाजनक था । धातु या हाथी दांत का मूल्य अधिक था और वे सुगमता से कलाकारों को प्राप्त नहीं थे । अतः इस क्षेत्र में धातु या हाथीदांत की प्रतिमाएं कम मिली हैं ।

विंध्य प्रदेश का अधिकांश प्राचीन काल में 'चेदि जनपद' नाम से प्रख्यात था । बाद में यह 'जेजाकभुक्ति' एवं तदरंतर 'बुन्देलखंड' नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसका पूर्वी भाग 'बघेलखंड' कहलाया । कला की दृष्टि से यह सम्पूर्ण भू-भाग बहुत समृद्ध है । सतना जिला में स्थित भरहुत नामक स्थान पर ई० पू० दूसरी शती में एक विशाल बौद्ध स्तूप का निर्माण हुआ ।

भरहुत स्तूप के बहुसंख्यक पाषाण कलावशेष इस समय कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय तथा प्रयाग एवं रामवन (जिला सतना) के संग्रहालयों में सुरक्षित है । गुप्त-वाकाटक काल में विंध्य प्रदेश के अनेक भागों में कला की उत्कृष्ट कृतियों का निर्माण हुआ । भुभरा और नचना के शैव मंदिर और मूर्तियां तथा खोह, उंचेहरा, नागोद इत्यादि स्थानों से प्राप्त कलाकृतियां यह

३

सूचित करती हैं कि चौथी-पांचवीं शती में विन्ध्य प्रदेश में कला की बड़ी श्री-वृद्धि हुई। पूर्व मध्यकाल में इस प्रदेश में बुन्देलों का शासन हुआ, जो अपनी कलाप्रियता के लिए विख्यात है। उनके द्वारा बनवाए गए खजुराहो के मंदिर इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

गुप्त-वाकाटक काल (ई० चौथी से छटी शती) में इस क्षेत्र की विशेष उन्नति हुई। सागर जिला, के एरण नामक स्थान से गुप्त सम्राट् सम्भवत: द्वितीय का एक लेख मिला है। इस शासक ने एरण के सामरिक महत्व को देखते हुए उसकी ओर विशेष ध्यान दिया। उसके उत्तराधिकारियों ने भी मालवा के इस पूर्वी द्वार पर अपना अधिकार बनाए रखना आवश्यक समझा। इन शासकों ने एरण में मन्दिरों तथा प्रतिमाओं का निर्माण कराया। इनमें भगवान् विष्णु तथा वराह की विशाल प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय हैं। गुप्तकाल में निर्मित भगवान् विष्णु का एक मंदिर एरण में भग्न रूप में विद्यमान है। इसके मध्य में विष्णु की मूर्ति तथा अगल-बगल वराह और नृसिंह की प्रतिमाएं प्रतिष्ठापित की गई थीं। भगवान् विष्णु की प्रतिमा चतुर्भुजी है। वे लम्बी वनमाला धारण किये हुए हैं। मन्दिर के गर्भगृह-द्वार पर एक ओर गंगा और दूसरी ओर यमुना की मूर्तियां उत्खचित हैं। इस काल में मन्दिर के द्वार पर गंगा और यमुना की मूर्तियां बनाने की प्रथा चल पड़ी थी।

एरण की पशु-रूप वराह-मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। उस पर वल्कल-धारी तथा कमन्डल लिए हुए ऋषियों का अंकन बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। विद्याधरों तथा ब्रह्मा आदि देवों की प्रतिमाएं भी पीठ पर उत्कीर्ण हैं। वराह के गले में एक भारी माला है, जिस पर अन्य अलंकरणों के साथ कई राशिओं का चिणत्र है। वराह भगवान् ने पृथ्वी को अनायास अपने दाहिने दांत पर उठा लिया है। पृथ्वी का इस प्रकार उद्धार करते हुए वराह की अनेक प्रतिमाएं गुप्तकाल में और उसके बाद निर्मित हुई। विदिशा तथा एरण में ऐसी कई प्रतिमाएं उपलब्ध हुई हैं। एरण की इस वराह मूर्ति पर हूण शासक तोर-माण के प्रथन राज्य-वर्ष का ब्राह्मी-लेख खुदा है इसमे एरण के प्रादेशिक शासक मातुविष्णु के छोटे भाई धन्यविष्णु द्वारा एक मंदिर बनवाने का उल्लेख है। गुप्तकालीन एक दूसरा लेख विष्णु मंदिर के सामने स्थित गरुड़ध्वज पर उत्कीर्ण है। इस विशाल स्तम्भ के ऊपर सर्प पकड़े हुए गरुड़ की मानव-मूर्तियां सामने सामने बनी हैं। खंभा नीचे चौपहलू और ऊपर अठपहलू है। उस पर उत्कीर्ण लेख में गुप्त संवत् १६५ (४८४ ई०) दिया हुआ है। चीनी पंक्तियों के इस लेख में लिखा है कि बुधगुप्त के राज्यकाल में यमुना और नर्मदा नदियों

के बीच वाले प्रदेश के शासक सुरश्मिचन्द्र थे। उनके अधीन एरण के विषय-पति मातुविष्णु द्वारा ध्वजस्तम्भ स्थापित किया गया था।

गरुड़ध्वज के समीप ही गुप्तकालीन स्तम्भों की एक पंक्ति है। इन स्तम्भों पर मंगलघट, कीर्तिमुख, पत्रावली आदि का सुन्दर चित्रण है। खंभों के नीचे जो आधार हैं, उन पर अनेक पौराणिक दृश्य दिखाये गए हैं। इनमें कृष्ण-लीला-सम्बन्धी दृश्य (यमलार्जुननोद्धार, कालियदमन, यशोदा-कृष्ण आदि) उल्लेखनीय हैं। ये सभी शिलापट्ट गुप्तकालीन हैं।

अन्य जो स्थान गुप्त-कला के लिए विशेप महत्व के हैं, वे नचना, भुमरा, नागौद, उचेहरा तथा खोह हैं। नचना में पार्वती का मन्दिर तथा उसमें उकेरी गई प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं। पार्वती-मन्दिर के समीप चतुर्मुखी शिव का प्रसिद्ध मन्दिर है। उसमें शिव की अत्यन्त कलापूर्ण मूर्ति के अतिरिक्त विविध देवों, गणों आदि की रोचक मूर्तियां विशेप उल्लेखनीय हैं। कई दुर्लभ गुप्तकालीन शिलापट्ट नचना में मिले हैं। रामकथा भुमरा के शिव-मन्दिर में शिव-पार्वती, सूर्य, गंगा-जमुना आदि की मूर्तियों के अतिरिक्त विविध मुद्राओं में शंकर के गण तथा अनेक अलंकरण बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से दिखाये गये हैं। गुप्तकालीन मूर्तिकला की बारीकी को समझने के लिए भुमरा की ये कलाकृतियां देखी जा सकती हैं। नागौद से पुष्पित वृक्ष की डाल पकड़े, आकर्षक भाव-भंगिमा में खड़ी शालभंजिका की एक मूर्ति मिली हैं। इसका अंगसौष्ठव दर्शनीय है। उचेहर गुप्तकाल में उच्च कल्प के राजाओं का केन्द्र था। वहां गुप्तकालीन एकमुखी तथा चतुर्मुखी शिव-लिंग प्राप्त हुए हैं।

खजुराहो मूर्तिकला का अप्रतिम आलय है। खजुराहो में उपलब्ध बहु-संख्यक मूर्तियों को हम विविध वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। पहले वर्ग में देव-प्रतिमाएँ आती हैं, जिनका निर्माण पूजा के लिए हुआ। ये मूर्तियां प्राय: चारों ओर से कोर कर बनाई गई और उन्हें मन्दिरों के गर्भगृहों अथवा अन्य विशेष स्थलों पर प्रतिष्ठित किया गया। अधिकांश देव प्रतिमाएं सीधी खड़ी हुई वा समभंग रूप में है और कई बहुत विशाल हैं। दूसरे वर्ग के अंतर्गत परिवार या पार्श्व-देवता आते हैं। ये अधिकतर बाहरी दीवालों पर या आलों पर बने हैं। इनमें विविध प्रकार के दिक्पालों, गणों, जैन शासन-देवताओं आदि की मूर्तियां हैं। तीसरे वर्ग में विशेषत: वे प्रतिमाएँ हैं जिन्हें 'सुर-सुन्दरी' या 'अप्सरा' कहते हैं। इनकी संख्या बहुत अधिक हैं। इन्हें अनेक आकर्षक मुद्राओं में चित्रित किया गया है। कहीं वे स्नान के बाद बालों से पानी निचोड़ रही हैं, कही पैर से कांटा निकाल रही हैं और बच्चों या पशु-पक्षियों से खिलवाड़ कर रही हैं। उन्हें कहीं वीणा-वंशी आदि वाद्य-यंत्र

बजाते हुए या गेंद खेलते हुए प्रदर्शित किया गया है। इन प्रतिमाओं में अनेक नायिकाओं के मूर्त रूप देखने को मिलते हैं, जिनके रोचक वर्णन भारतीय-साहित्य में उपलब्ध हैं। चौथे वर्ग के अंतर्गत घरेलू जीवन-संबंधी दृश्य तत्कालीन जीवन की सुन्दर झांकी प्रस्तुत करते हैं।

पांचवें वर्ग में पशु-पक्षियों की प्रतिमाएँ आती हैं। पशुओं में सबसे अधिक शार्दूल मिलते' हैं, जिसे प्रायः सींगों वाले शेर के रूप में चित्रित किया गया गया। खजुराहो के कलाकारों को अलंकरण के रूप में इस पशु का अलंकरण बहुत प्रिय था। अन्य अनेक पशु-पक्षियों के चित्रण भी बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से किये गए हैं।

खजुराहो की इस कला-राशि में पूर्व-मध्यकालीन भारत का जीवन मूर्तिमान हो उठा है। वेशभूषा, प्रसाधन, संगीत, नृत्य, आखेट, युद्ध आदि के अनेक दृश्य इस कला में देखने को मिलते हैं। इहलोक और परलोक की कितनी ही मनोरम भावनाएं खजुराहो की बहुसंख्यक मूर्तियों में साकार हो उठी हैं प्रकृति और मानव-जीवन की ऐहिक सौंदर्य-राशि को यहां के मंदिरों में शाश्वत रूप प्रदान कर दिया गया है। शिल्प-श्रृंगार का इतना प्रचुर तथा व्यापक रूप भारत के अन्य किसी कला-केन्द्र में शायद ही देखने को मिले।

खजुराहो में कुछ ऐसी मूर्तियों का निर्माण भी हुआ, जिन्हें हम उत्तान श्रृंगार की जीती-जागती पुत्तलिकाएँ कह सकते हैं। ये मन्मथ मूर्तियां इस क्षेत्र में काल-कापालिकों के तत्कालीन बढ़ते हुए प्रभाव को सूचित करती हैं। तांत्रिक विचारधारा का यह अशालीन रूप न केवल खजुराहो में अपितु महाकोसल और उड़ीसा के कई स्थानों में देखने को मिलता है। पुरी, भुवनेश्वर, कोणार्क आदि स्थानों में कला के इस उत्तान श्रृंगारपरक रूप को हम देखते हैं। भारतीय जन-समाज का एक अंग वाम मतावलंबियों के द्वारा प्रभावित हो गया था, इसका ये प्रतिमाएँ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

खजुराहो का रूप-विधान ललित-कला के विविध रूपों का समन्वय है। एक ओर इसमें हमें चारुत्व-तत्व का सूक्ष्मतिसूक्ष्म अंकन मिलता है तो दूसरी ओर श्रृंगारिकता का उत्कट रूप दिखाई देता है।

ललितपुर-झांसी क्षेत्र में देवगढ़, चंदेरी, दूधई, चांदपुर आदि अनेक कलाकेन्द्रों में मूर्तिकला का बड़ा विकास हुआ। इन स्थानों से गुप्तकाल से लेकर मध्यकाल तक की बहुसंख्यक मूर्तियां मिली हैं। अधिकांश प्रतिमाएँ शैव शाक्त, वैष्णव तथा जैन धर्मों से संबंधित हैं।

देवगढ़ का दशावतार विष्णु मंदिर गुप्तकालीन मूर्तिकला के लिए बहुत प्रसिद्ध है। चारुत्व तत्व की दृष्टि से यहां की अनेक मूर्तियां उत्कृष्ट हैं।

श्रीकृष्ण-लीला तथा रामवनगमन के अनेक रोचक दृश्य यहाँ की कला में उपलब्ध हैं। रामकथा के फलकों की तुलना नचना में प्राप्त शिलापट्टों से की जा सकती है, जिनमें श्रीराम के पंचवटी वास, सीता-हरण सेतुबंध आदि के मनोरम चित्र हैं।

देवगढ़ तथा उसके समीपस्थ क्षेत्र में जैनमूर्तिकला का बड़ा विकास हुआ। वहाँ ३१ प्राचीन जैन मंदिर हैं। प्राप्त लेखों से ज्ञात हुआ है कि देवगढ़ में भट्टारक सम्प्रदाय का बड़ा केन्द्र था। मंदिरों में जैन तीर्थंकारों की कलापूर्ण प्रतिमाओं के अलावा अनेक देवी-देवताओं तथा लोकजीवन के विविध चित्रण हैं। सरस्वती, अंबिका, पद्मावती, चक्रेश्वरी, गंगा-यमुना आदि की कतिपय अत्यन्त मनोरम मूर्तियां देवगढ़ में सुरक्षित हैं। निस्संदेह बुन्देलखण्ड में मूर्तिकला में भारतीय संस्कृति की बहुरंगी झांकी देखने को मिलती है।

—एच/१५, पदमाकर नगर, सागर।

हस्तलिखित ग्रन्थों, पत्रों, सनदों आदि की सुरक्षा की अपील

आपके या आपके मित्रों के पास यदि हस्तलिखित या दुर्लभ प्रकाशित ग्रंथ पत्र, सनदें आदि हैं, तो आपसे साग्रह निवेदन है कि—

- आप उनकी सूची और संक्षिप्त विवरण अकादमी को भेजें, अकादमी उसे 'मामुलिया' में प्रकाशित करेगी। आपके इस पुण्य कार्य से छिपी हुई विभूतियाँ प्रकाश में आयेंगीं और शोध कार्य को गति मिलेगी।
- आप उन्हें अकादमी को प्रदान कर रसीद ले लें, अकादमी ऐसे उदार दाताओं का नाम ससम्मान प्रकाशित करेगी और साथ ही उपयोगी ग्रंथों को यथा शक्ति प्रकाशित करने का प्रयत्न करेगी। ऐसे प्राप्त ग्रंथ, पत्र, सनदें आदि पुस्तकालय में सुरक्षित कर केवल शोधकर्ताओं के लिये उपलब्ध कराये जावेंगे।

—मंत्री
बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी
छतरपुर-४७१००१, म० प्र०

भवभूति के नाटकों का मंचन स्थल कालपी का सूर्य मन्दिर / डा० राधाकांत पाण्डेय

[मामुलिया के दूसरे अंक में डा० वा० वि० मिराशी के शोधनिबन्ध ने एक जागरूक चेतना स्फुरित कर दी थी और अकादमी ने महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण; उत्तरीय मंडल, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, आगरा एवं निदेशक, राजकीय संग्रहालय झांसी को सूर्य मंदिर, कालपी के उत्खनन के लिये पत्र लिखे थे। साथ ही शिक्षा मन्त्री, केन्द्रीय शासन एवं सचिव, संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश का भी ध्यान आकर्षित किया था। परन्तु अभी तक कोई, प्रतिक्रियात्मक सूचना प्राप्त नहीं हुई। अब इस अंक में पूर्वलेख के तारतम्य में प्रस्तुत है कालपीवासी विद्वान डा० राधाकान्त पांडेय का शोधपूर्ण लेख, जिसमें कालपी से दो-तीन मील दूर यमुनातटीय टीला, उसके नीचे एक कुण्ड, सूर्यचक्र एवं टीले पर होने वाले मेले (सूर्ययात्रा) से सिद्ध होता है कि कालप्रियनाथ (सूर्य) का मन्दिर उसी स्थल पर स्थित होना संभावित है। पुरातत्वविदों से पुन: अपील है कि वे इस प्राचीन सम्पदा को उजागर करने में अपना अमूल्य योग प्रदान करें।—सम्पादक]

आधुनिक शोध से यह प्रमाणित हो चुका है कि संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार भवभूति के नाटकों का प्रथम मञ्चन कालपी में सूर्य देव के मन्दिर के सम्मुख हुआ था।

भवभूति के परिचय से स्पष्ट है कि उन्हें पाण्डित्य पर स्वयं गर्व था। अपने नाटकों में उन्होंने इस बात को व्यक्त भी किया है (यं ब्रह्मणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते। उत्तररामचरित १/२) उन्हें इस बात का दु:ख था कि उनका सम्मान उनके जीवन में उतना नहीं हुआ जितना होना चाहिये था। भवभूति आशावादी थे। उनके आशा थी कि कभी न कभी तो उन्हें पहचानने वाले लोग इस पृथिवी पर उत्पन्न होंगे ही।

ये नाम के चिदिह न: प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्न:
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधि विपुला च पृथ्वी ॥ मालतीमाधव १/८।

महाकवि भवभूति, दक्षिण में सम्मान प्राप्त न होने के कारण उत्तर भारत आये और कन्नौज के राजा यशोवर्मा के राजदरबार में सम्मान प्राप्त किया।

कविर्वाक्पतिराजश्री भवभू त्यादि से वित:।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुण स्तुतिबन्दिताम् ॥
(राजतरंगिणी—कल्हण ४।१४४)

महाकवि भवभूति का स्थिति काल ६७५ ई० से ७५० ई० के मध्य माना जाता है।

भवभूति के नाटकों की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उनके नाटकों का प्रथम अभिनय कालप्रियनाथ की यात्रा (मेला या उत्सव) पर किया गया था जिसमें दूर दूर से लोग आया करते थे। इस मेला में मनोरञ्जन के लिये नाटकादि के आयोजन हुआ करते थे। विद्वानों की प्रेरणा से भवभूति ने आगन्तुओं के मनोरञ्जन के लिये नाटकों का अभिनय कराया था।

सन्निपतितश्च भगवत: कालप्रियनाथस्य यात्रा प्रसंगेन नाना दिगन्तवास्तव्यो जन:।····आदिष्टोऽस्मि विद्वत्परिषदा यथा—अथ त्वयाऽपूर्वं वस्तु प्रयोगेन वयं विनोदयितव्या इति।

(मालती माधव पृष्ठ ७)

कालप्रियनाथ कहाँ है? ये सूर्य हैं अथवा शिव। इस विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है। कालप्रियनाथ से विद्वान् कालपी, उज्जयिनी और कन्नौज के विकल्प में थे। पर आधुनिक शोध से इन सब विकल्पों का समाधान हो जाता है। कालप्रिय कालपी ही है तथा कालप्रियनाथ सूर्यदेव हैं। कालप्रियनाथ से कालपी के सूर्य देव ही विकसित है।[१]

कृष्ण द्वारा शप्त उनके पुत्र साम्ब ने अपने कुष्ठ रोग निवारणार्थ तीन स्थानों पर सूर्य की स्थापना की—

गौरशास्त्रस्य कर्ता च प्रतिमा मंदिरस्य च
मूलस्थानं निवेशश्च कृतस्तेन महात्मना
तुष्टेन देवदेवेन कुष्टरोगो विनाशित:।
पद्म पुराण सृष्टि खण्ड १३/१६१ से १६२)

---

१. भवभूति—म० म० वामन विष्णु मिराशी
२. महाकविभवभूति—डा० गंगासागर राय
३. कुन्दमाला तथा उत्तररामचरित नाटक का तुलनात्मक अध्ययन: लेखक का शोध प्रबंध

कालप्रिय कालपी का ही प्राचीन नाम है तथा कालप्रियनाथ कालपी के दक्षिण तट पर साम्ब द्वारा स्थापित सूर्य देव ही हैं। जहाँ पर भवभूति के तीनों नाटकों का प्रथम अभिनय हुआ था। अब विचार करना है कि उक्त सूर्य मंदिर कालपी में कहाँ पर स्थित है।

वर्तमान कालपी से लगभग दो-तीन मील पूर्व में यमुना के तटपर एक टीला है। इस टीले के नीचे लोधा कुण्ड है। इस टीले पर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष (अगहन) के अन्तिम रविवार को मेला लगता है। ग्रामीण इस मेले को 'सूर्य यात्रा' कहते हैं। यह सूर्ययात्रा अथवा सूर्यापतन का विकृत रूप है। महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में मेला के स्थान पर यात्रा शब्द का प्रयोग किया है। यात्रा का अर्थ संस्कृत में मेला भी होता है। महाराष्ट्र में यात्रा शब्द का प्रयोग मेला के अर्थ में किया जाता है। भवभूति दक्षिण के ही थे, अतः मेला अर्थ में यात्रा शब्द का प्रयोग करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भवभूति का स्थिति काल सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा के राज-दरबार में सम्मान पाते हैं। उस समय कालपी नगरी कन्नौज के राजा के ही राज्य में थी। यहीं कालपी में सूर्य-मन्दिर के सामने उस विशाल मेले में भवभूति के तीनों नाटकों का प्रथम अभिनय हुआ था। भवभूति के समय में यह विशाल मेला रहा होगा, जिसमें देश-देशान्तरों से जनसमूह एकत्र होता था। इस प्रकार सूर्ययात्रा का मेला सातवीं शताब्दी से भी प्राचीन है। वर्तमान काल में यह प्रतीक रूप में रहा गया है। अब मेला में तीन-चार सौ की ही भीड़ होती है। ग्रामीण ही उस मेले में आते हैं। क्या कहूँ, कालपी के अधिकांश नागरिकों को भी उसकी प्राचीनता का आभास नहीं है। सूर्य मन्दिर के नाम (सूर्ययात्रा) से भी वे अनभिज्ञ हैं।

आज भी ग्रामवासी इस मेले के अवसर पर सूर्य की पूजा करते हैं। इस समय वहाँ पर सूर्य मन्दिर के कोई स्पष्ट चिन्ह नहीं हैं, केवल एक पाषाण खण्ड पर सूर्यव्रत एक चक्र बना हुआ रखा है, जिसका मेले के अवसर पर पूजन किया जाता है।

प्रसिद्ध पुरातत्व-शोधकर्त्ता पं० श्याम मनोहर मिश्र कालपी आए थे। उन्होंने अखिल भारतीय काशिराज ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'पुराणम्' में लिखा है कि महात्मा गान्धी संग्रहालय में जो मूर्ति देखी, वह सूर्य की भग्न प्रतिमा है, जो प्राचीन सूर्य मन्दिर में रही होगी। पर अब इस संग्रहालय से वह मूर्ति चोरी चली गई है।

समीप ग्राम के वृद्धजनों से बात करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि कुछ वर्ष पूर्व एक बड़ी-सी चट्टान पर एक सूर्य चक्र बना हुआ था, जो कि अब यमुना की धारा में विलीन हो गया है।

प्राचीन काल में कालपी एक विशाल नगरी थी, जो कई मील तक फैली थी। आज भी उसके चिन्ह प्राप्त होते हैं।

चतुर्योजनदैर्घ्येण योजनद्वयमायतम्।
देवर्षिमुनि वृन्दाढ्यम् संसार भयनाशनम्। कालपी महात्म्य-१५।

इस आधार पर यह असंभव नहीं कि सूर्य मन्दिर आज की कालपी से दो-तीन मील दूरी पर स्थित रहा हो। कालपी का प्राचीन इतिहास, उसकी धार्मिक और साहित्यिक परम्पराएं भी इस तथ्य की साक्षी मानी जा सकती हैं। मुझे आशा है कि पुरातत्वविद सूर्य-मन्दिर को प्रकाश में लाने में अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

—५५ मनोगंज, कालपी (जालौन) उ० प्र०

इंसान और पेड़ / बाबूजी खरे

इंसान से पेड़ बहुत बड़ा है
देखते नहीं यह कब से खड़ा है।
कितने आये आंधी और तूफान
पर मिटा सके क्या इसकी मुस्कान।
और आदमी,
एक झौंके में ही टूट जाता है
इसलिए इंसान—
पैदा करने से कहीं ज्यादा
मुझे पेड़ लगाना भाता है।

श्याम लोचन / स्व० पं० माखनलाल चतुर्वेदी

[पं० माखनलाल चतुर्वेदी के कुछ अप्रकाशित गीत श्री श्रीकान्त जोशी; खण्डवा से प्राप्त हुए हैं, जिनमें से 'श्याम लोचन' सहज अनुभूति का गीत है और उससे कवि की उस सहज भावुकता का पता चलता है, जो रहस्यमयी धारा से बहुत पहले की रही होगी। वस्तुतः कवि के 'उस व्यक्तित्व' की खोज हिन्दी की एक मूल्यवान धरोहर होगी।—सम्पादक]

(तिलक कामोद-१६ मात्रा)

श्याम लोचन मन बस गयो री।
मधुर बैन कर सैन नैन से,
छीन लीन्ह मन चपल ऐन से,
कुछ न सुहावत सुधि न रैन से,
जब हरि हँस गयो री।
श्याम लोचन मन बस गयो री।
अति कारे, प्यारे, अनियारे,
कजरारे किमि जाँय निहारे,
उरग समान, दो अलक सँवारे,
सोइ मेरो हियो डँस गयो री।
श्याम लोचन मन बस गयो री।
नागर नट पनघट तट आयो
अँखियाँ निरिखि घूँघट सरकायो
मैं तन मनकी सुधि बिसरानी
मानो प्राण निकसि गयो री।
श्याम लोचन मन बस गयो री।
कल न परत मोहे आठों याम सखि,
कछु न सुहावत धन औ धाम सखि
रूठ्यो 'माखन' चोर श्याम सखि–
मन परवस गयो री।
श्याम लोचन मन बस गयो री।

(श्री श्रीकान्त जोशी, खण्डवा के सौजन्य से)

विनयचंद्रिका का टीकागद्य

- ग्रंथ—विनयचन्द्रिका (विनयपत्रिका को तिलक)।
- ग्रंथकार—महाराज रतनसिंह जू देव, चरखारी- नरेश।
- रचना-काल—रतन नृपति यह विधि रच्यो, सर्ल अर्थ अभिराम।
  विनयपत्रिका को तिलक, विनयचन्द्रका नाम ॥ पुष्पिका ॥
  संवत् वसु नभ नय ससी, सित इपु विधि बुधवार। (सं०१६०८)
  विनयचन्द्रिका को भयो, ताही दिन अवतार ॥ पुष्पिकार ॥
- गद्य--मूल--नाथ नीके जानवी ठीक जिय जन की। छंद सं० २८१।

टीका-- फेर गुसीईं जू स्वामी सों विनय करत है कि हे नाथ जन जो हों मैं तिहि के जिय की ठीक जांनवी कहा सत्य जानवी अच्छी तरह सें अरु रावरों भरोसो कहें आपही को भरोसो है जिहि को ऐसो जो मैं हों तिहि की जो मति कहें बुद्ध सोई भई तिय कहें स्त्री तिहि की रुचिर कहें सुन्दर रहन है तिहिने सुन्दर जो तुम्हारो प्रेम नेम सो लिये है। फेर दुक्रत जो लटो कर्म सुक्रति जो सुभ कर्म इनही के बस होके मोसे सबही से भओ। परन्तु पराई जो राति है सो अपने किये की परखी कहा दिखा परी कहा यह लोक मै रीति है कि अपने अपने को भलो सब करत हैं। परन्तु मेरे भले को गुसांई कहें हे स्वामी तुमहीं हो अरु पोच कहें लटी जो बात हो जाइ ताको मोकों सोच नहीं है काहे तें कि होंहु कहें मैं जो हों सो सकल कहें सबनि काम हीं काम कियो है सिय पिय जे आप तिनको सांची सौगंध कर कहत हों। फेर जो मैं वा लाबरी कहत होंव तो ज्ञान जो है अरु गिरा जो वाणी तिहि के स्वामी हो बाहर भीतर के जाननवारे हो तिहि ते इहाँ कहें आपसे आगे मुख की अरु हृदे की बात कैसें छिपत है तिहि ते तुलसी तुम्हारो है सो तुमही पै कहें तुमही एक तुलसी के हित करनबारे हो ई बात मैं कछू मै राख कें कहा चुराइ कें जो कहो तो मै घीव की माछी हूहों। जैसें घी मै तें माछी ऐंच कें फेंक देनै आवत है ऐसे मै दरिबार सें निकारो जैहों यह बिग है अथवा जैसें घीव समेत माछी खाइ जाइ तो बोही खबैया को लटो होत ऐसो मोरहू बिगर जैहै ॥ २८१ ॥

टिप्पणी--ई टीका में कछू लिखनबारे नें कछू सुधारनबारे नें और कछू छापनबारे नें बदल दओ है। टीका के बीच-बीच में मूल सबदन खां सोऊ रक्खो गओ है। बुन्देली के सबदन को उच्चारन की तरां लिलबो, सोइ मुस्किल परत। ईसें सबई सोच कें पढ़बे की जरूरत है।

--सम्पादक

(श्रीमती गायत्री देवी परमार, नई कालोनी, छतरपुर के सौजन्य से)

पौंड़ी नौनी रात / 'हरिदेव' गुप्त

पौंड़ी नौनी रात सखी री रूपे की भूप सिजरिया पै।
अरी हाँ री सखी री चंदा की चरचा चालें
चित चोंकत हियें डरात सखी री रूपे की भूम०।
अरी हाँ री सखी री ओड़ें पिछौरी जुंदैया की
चौगेर दबाउत जात सखी री रूपे की भूम०।
अरी हाँ री सखी री छैला के छिगरी छूयें
ओसन भींजत जलजात सखी री रूपे की भूम०।
अरी हाँ री सखी री भरत उसाँस अघाय
लै पावो मसा कें प्रात सखी री रूपे की भूम०।

ऐतिहासिक कहानी

प्रवीणराय / स्व० किशोरीलाल अग्रवाल 'लल्ला'

--स्वामी...--कानों पर तालियां बजाते हुए प्रवीण ने धीरे से कहा।

--हूँ, कौन प्रवीन...? आओ बैठो।

--आज आप चिन्तित से नजर आ रहे हैं--प्रवीण ने पार्श्व में बैठते हुए पूछा।

--नहीं तो...--इन्द्रजीत बोले।

--कैसे नहीं...--प्रवीण ने उनका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा--पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ। आप को तो मेरे आने की गंध दूर से ही आ जाया करती थी। मैं कब से आपके समीप खड़ी हूँ। आप मेरा आना भी न जान सके। सोच रही थी, कब आप सिर उठाते हैं। उठाते थे, पर सिर की बात तो दूर रही आपने आँख तक नहीं उठाई। बताइए नाथ, क्या कारण है?

--कुछ भी तो नहीं--इन्द्रजीत ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

--स्वामी, आप मुझसे जरूर कुछ छिपा रहे हैं। जब मैं आप के पास आ रही थी, तो रास्ते में आचार्यजी भी नीचा सिर किये, विचारों में खोये चले जा रहे थे। उनका मुख चिंतित दिखाई पड़ रहा था। मैंने अभिवादन भी किया, लेकिन उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया और आगे बढ़ गये। कोई न कोई कारण अवश्य है। आचार्य जी को मैंने इतना चिंतित कभी नहीं देखा। बताइए नाथ क्या कारण है। मेरा मन डूबा जा रहा है।

सत्य कहता हूँ प्रवीण, कोई कारण नहीं है--इन्द्रजीत ने हँसने का असफल प्रयत्न करते हुए कहा--तुम आकरण ही चिंता कर रही हो।

--ये मैं कैसे मानूँ। इधर कुछ अरसे से मैं देख रही हूँ कि आप हमेशा खोये-खोये से रहते हैं। आपकी वह मुस्कान न जाने कहाँ चली गई है। कमल सा खिला वह चेहरा दिन पर दिन कुम्हालाता चला जा रहा है। हे नाथ, आपको क्या हो गया? ऐसा कौन-सा कारण है, जिसने आपकी यह हालत कर दी। जरा अपना मुख शीशे में तो देखिए। हजूर फिर कहिये कि कुछ

नहीं। आपको मेरे सिर की सौगंध, मुझे सच-सच बताइए।

—प्रवीण····—एक लम्बी सांस लेते हुए इन्द्रजीत बोले—क्या कहूँ, क्या न कहूँ, कुछ समझ में नहीं आता। मेरी हालत तो उस सांप-सी हो गयी है, जिसे न तो निगलते बनता है और न ही उगलते। एक ओर यदि कुँआ है, तो दूसरी ओर खाई। क्या करूँ, क्या न करूँ प्रवीण, मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। और वह चुप रह गये।

—नाथ, ये कैसी पहेलियां बुझा रहे हैं। स्पष्ट क्यों नहीं बतलाते कि क्या कारण है। क्या आप मुझे पराया समझते हैं, जो मुझसे छिपा रहे हैं, बतलाइए न ···।—कहते-कहते प्रवीण का गला भर आया और आंखों से आंसू बह निकले।

—कैसे कहूँ, प्रवीण—'इन्द्रजीत ने उसे छाती से लगाते हुआ कहा—जिसकी मैंने स्वप्न तक में कल्पना न की थी, आज वही घट गया। मेरे सब सामन्त दगा दे गये। समय पर कोई काम नहीं आया। अपने पराये बन गये। सभी बगलें झांकते चले गये।

—'ऐसा क्यों नाथ ?—प्रवीण ने बीच में ही टोकते हुए पूछा—बड़े आश्चर्य की बात है। कल तक तो वे सब आपको 'अन्नदाता'—'अन्नदाता' कहते न थकते थे और आज ऐसे बदल गये। आखिर क्यों ?

—भाग्य का चक्र है 'प्रवीण ! कल किसी ने नहीं देखा। सब लोग अपने प्राणों को बचाने के लिए बहाना बना कर चले गये। ऐसे-ऐसे असंगत तर्क दिये, जिसको सुन कर आश्चर्य होता है कि क्या ये वही बुन्देला संतान है, जो अपनी आन पर प्राण की बाजी लगा देते थे। मातृभूमि के लिए अपने प्राण निछावर कर देते थे। शरीर में रक्त की एक बूंद रहने तक शत्रुओं से युद्ध करते थे। धिक्कार है, धिक्कार है—उन पर जो एक नारी की रक्षा करने में अपने को असमर्थ बता रहे हैं।' कहते-कहते उसका गला रुँध गया, वाणी कांप गयी।

'नाथ, शान्ति धारण कीजिए।—प्रवीण ने इन्द्रजीत से कहा—रामराजा पर विश्वास रखिए प्रभु जो करेंगे, वही ठीक होगा। लेकिन ये तो बताइए नाथ, वह ऐसा कौन-सा कारण है, जिसमें आपके सामन्त आपसे मुख मोड़ चले गये और जिससे आपको इतना कष्ट हो रहा है।

कांपते हाथों से, कागज का एक टुकड़ा प्रवीण के हाथ में थमाते हुए इन्द्रजीत ने अपना मुख मोड़ लिया।

—प्रवीण ने कागज को पढ़ा, फिर पढ़ा, एक बार और पढ़ा फिर खिलखिलाकर हँसी और हंसते हुए बोली—बस इतनी छोटी-सी बात के लिए,

स्वामी इतनी बड़ी चिंता कर रहे हैं ये तो क्षणों में सुलझ जायेगी। आप क्यों चिंता कर रहे हैं ?

—कैसे ठीक हो जायेगा, प्रवीण ?—इन्द्रजीत बोला—काल सीस पर मँडरा रहा है और तुम कहती हो कि चिंता न करूँ।

मेरा मन कहता है कि सब ठीक हो जायगा।—प्रवीण ने संयत स्वर में कहा—आपने यदि मुझे पहले ही बताया होता, तो आप को इतनी चिंता न करना पड़ती।

—प्रवीण मैं कहीं का न रहा। मेरा पौरुष मेरे ऊपर हँस रहा है। इन धमनियों का रक्त पानी बन गया है। यह कैसी बिडंबना है। मैं अपनी प्रेयसी को अपने हाथों ही म्लेच्छ को थमा दूँगा·· नहीं-नहीं यह कभी न होगा····कभी न होगा। जब तक इस तन में प्राण हैं, आंखों में ज्योति है, मेरी प्रेयसी को लेना तो दूर रहा, कोई आंख भी उठा कर नहीं देख सकता। मैं खून के अन्तिम कतरे तक लड़ूंगा। कहते-कहते इन्द्रजीत का हाथ तलवार की मूठ पर चला गया।

—नाथ आप धीरज धारण करें, ऐसा कुछ भी नहीं होगा। मेरे जीतेजी स्वामी को कष्ट हो इससे बढ़ कर लज्जा की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है। कोई न कोई युक्ति निकल ही आयेगी। प्रवीण ने शांत भाव से कहा।

—'कब युक्ति निकल आयेगी ?—इन्द्रजीत बोला—दुश्मन बाहर उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ा है और तुम कहती हो, धीरज धरूँ। प्रवीण अब समय नहीं है। प्रतिहारी को बुला कर कह दो कि पत्रवाहक से कह दे कि प्रवीण शाही दरबार में नहीं जायेगी, कभी नहीं जायेगी।

—नाथ, आप कैसी बात कर रहे हैं।—बीच में ही प्रवीण बोल उठी—आप इसका परिणाम जानते हैं ? एक नाचीज के लिए ओरछा की बरबादी, हजारों नारियों के सुहाग की होली, उजड़ी हुई माओं की गोदें···नाथ, ऐसा कभी नहीं होगा····मेरे निमित्त इस धरा पर रक्त नहीं बहेगा···नहीं बहेगा···· मैं जाऊँगी···शाही दरबार में जाऊँगी···निश्चित जाऊँगी।

—तुम नहीं जाओगी····कभी नहीं जाओगी।—इन्द्रजीत बौखलाता हुआ बोला—मेरे जीतेजी तुम शाही दरबार में नहीं जा सकती।

नाथ, प्रवीण ने उनके मुख पर हाथ रखते हुए कहा—धीरे से बोलिये, दीवालों को भी कान होते हैं। जरा सोचिये तो सही, अपने पास और चारा ही क्या है। इतने बड़े मुगल सम्राट से लोहा लेना मूर्खता ही होगी, फिर आपके सामंत भी पीठ दिखला रहे हैं। किसके बल पर हम पहाड़ से मुड़

मारें। मेरा जाना उचित ही होगा। फिर मैंने सुना है कि शाहंशाह गुणग्राही है, कला का पारखी है। हो सकता है उसने हमारी कला परखने के लिए ही हमें बुलाया हो। फिर उसके पास जाने में हर्ज ही क्या है। --प्रवीणराय ने विश्वास के साथ कहा।

—उसके पास जाने में हर्ज, क्या कहती हो, प्रवीण ?'

—'हाँ स्वामी—प्रवीण ने दृढ़ता से कहा—मैं ठीक ही कहती हूँ। मेरी आत्मा बोलती है कि सब शुभ होगा और यदि शाहंशाह के मन में मेरे लिए खोट भी हो, तो भी कोई हर्ज नहीं। ये कटार फिर कब काम आयेगी। मेरे जीतेजी वह मेरी देह नहीं छू पायेगा। नाथ, दासी की चिन्ता न करें। मुझे आज्ञा दें मैं जाऊँ। पत्रवाहक से कहला दें कि प्रवीण आठ अंगरक्षकों के साथ आठ दिन पहले ही जहाँपनाह की सेवा में प्रस्थान कर चुकी है। --और उसने इन्द्रजीत के पैर पकड़ लिए।

—प्रवीण, प्रवीण। कैसी बातें करती हो ?—इन्द्रजीत विचलित हो उठे।

—आपको मेरी सौगंध है नाथ, यदि आपने मेरे जाने में आनाकानी की मैं अकेले ही जाऊँगी। किसी को कानोंकान पता न चले। -और उनके गले में झूलती हुई बोली—क्या दासी को चलते समय अपना उपहार भी न दोगे ? इतने निष्ठुर न बनो नाथ।—कहते-कहते उनकी बाँहों में समा गई।

ऊषा आज नवसिंगार लिए आगरा के गगन-मंडल पर आई। पक्षी अपने नीड़ों से निकलकर डालियों पर चहचहाने लगे। पनघटों पर नव वधुओं में सुन्दरता की होड़ लग गयी। आज सुबह से ही आगरा की सड़कों पर चहल-पहल है। नगरी को दुल्हन-सा सजाया जा रहा है। जगह-जगह बन्दनवारे बँधे है। नये-नये ध्वज कंगूरों पर फहरा रहे हैं। साँझ को सारी नगरी दीपों से जगमगा उठी। संभ्रांत नागरिक नई-नई पोशाकों में किले के भीतर जा रहे हैं। कल शाम को ही अबुलफजल का पत्र आया था कि अल्लामियाँ की नेक नजर से आपके खिदमतगार ने चाँदबीबी को कत्ल कर अहमदनगर फतह कर लिया है। इसी खुशी के उपलक्ष्य में दीवाने आम में जश्न मनाने का शाही ऐलान कल रात को ही हो गया था। सभी मन्त्री, सामन्त, संभ्रात नागरिक अपनी अपनी मसनदों पर बैठ गये। वेश्यायें अपने-अपने उस्तादों के पार्श्व में पुतरियों सी सजी-धजी बैठी हैं। अनेक लोगों की आँखें, छुप-छुप कर उनकी रूप-सुधा का पान कर रही है। सभी लोग शाहंशाह की प्रतीक्षा में हैं। इसी बीच नगाड़े बजने लगे। कानों में शब्द गूँज उठे—

बाअदब बामुलहजा होशियार, दीनेइलाह, दीनेपरवर नजर मानो दौलत बख्शिशोइज्जत, शहनशाहे हिन्दुस्तान, जलालुद्दीन अकबरे आजम तशरीफ

फरमा रहे हैं। सभी लोग नीचा सिर किये खड़े हो गये। शाहंशाह को पधारते ही सब लोगों ने तीन तीन बार झुक झुक कर अभिवादन किया। अकबरे आजम के शाही मसनद पर बैठते ही सब लोग अपनी-अपनी मनसदों पर बैठ गये। अकबर रहीम खाना-खाना की ओर मुखातिब हो बोले—रहीम इस खुशी के मौके पर मौ बदौलत को बीरबल की याद बरबस आ रही है, उसका हमारे बीच से उठ जाना मन को खल रहा है। उस जैसा अनमोल रत्न अब हमें नहीं मिलेगा। खान-खाना, किसी भी मूल्य पर उसकी पूर्ति करो।

—जहाँपनाह, होगी। —झुक कर अभिवादन करते हुए रहीम ने कहा। फिर बात को बदलते हुए बोले—आपके हुक्म से जश्न मनाने का शाही ऐलान कर दिया था। सभी सम्भ्रांत नागरिक उपस्थित हो चुके हैं। दीनेपरवर का हुक्म हो, तो जश्न शुरू कर दिया जाये।—और शाहंशाह की ओर देखने लगे।

शाहंशाह का इशारा पाते नूपुरों की ध्वनि गूंज उठी। स्वर-लहरी हवा में तैरने लगी। वातावरण में मधुरता छा गई। सबलोग अपलक पैरों का थिरकना, घुँघरुओं का मचलना देख सम्मोहित से हो गये। तबले की थाप, वीणा की झंकार और मुख की अदाओं ने ऐसी समा बाँधी कि सब लोग अपने को भूल उसी में खो गये। एक तरफ एकाएक घंटा गूँज उठा। नूपुरों की ध्वनि, घण्टा की आवाज में विलीन हो गयी। चारों ओर सन्नाटा छा गया। सम्राट का माथा ठनका। रहीम की ओर उन्मुख होकर बोले—'देखो, कौन मौं बदौलत से दया की भीख माँग रहा है।''

रहीम लौटकर अभिवादन कर बोले—दीने परवर एक औरत आप की सेवा में अर्जी लिए खड़ी है।

—जाओ और उसे दरबारेआम में हाजिर करो।–अकबर ने हुक्म दिया।

रहीम उसको साथ लिए उपस्थित हो गये।

अकबर ने उसे देखा और देखता ही रह गया। उसके हरम में अनेकों हूरें थीं, बाहर भी सैकड़ों देखी थीं, लेकिन इसके सामने सभी बदरंग लगीं। एकाएक उसे शाही मनसद का एहसास हुआ। वह सँभला और कड़कती आवाज से बोला—ऐ औरत तूने घण्टा क्यों बजाया ? तेरा नाम-गाँव क्या है ?

—जहाँपनाह दीनेपरवर मेरा नाम प्रवीणराय है। ओरछा की निर्वासिनी हूँ। दीनेपरवर ने याद फरमाया था, दासी सेवा में उपस्थित है। मुझे उपस्थित होने में विलम्ब हुआ। शाहंशाहे हिन्दुस्तान से विलम्ब के लिए रहम की दरख्वास्त चाहती हूँ। और उसने तीन बार मस्तक झुका कर शाहंशाह का अभिवादन कर नतमस्तक हो फर्श में कढ़े बेलबूटों को देखने लगी।

—आने में विलम्ब क्यों हुआ? अकबर ने कड़कती आवाज में फिर प्रश्न किया।

—जहाँपनाह–प्रवीणराय ने नपे-तुले शब्दों में कहा—आपका फरमान मिलते ही ये दासी ओरछा से चल दी। महाराजा ने आठ अंगरक्षक भी मेरे साथ कर दिये थे। बीहड़ों में अचानक दस्युओं ने धावा बोल दिया। मेरे सभी साथी मारे गये। मैं किसी प्रकार जान बचाकर आपकी सेवा में उपस्थित हो सकी।

—मेरा दूसरा फरमान मिला था? अकबर बीच में बोल उठा।

—कौन सा दूसरा फरमान, जहाँपनाह?—प्रवीणराय ने अचंभे से पूछा।

—बनो मत प्रवीनराय। मां बदौलत की आंखों में धूल झोंकने की गुस्ताखी कर रही हो। मैंने हुक्म दिया था, प्रवीणराय को भेजो और साथ में एक करोड़ रुपया हुक्म-अदूली का वरना ओरछा को श्मशान बना दिया जायेगा। बोलो फरमान मिला था या नहीं?

—मां बदौलत मैं आपके सामने गुस्ताखी करने की हिम्मत कैसे कर सकती हूँ।—प्रवीणराय ने निडरता से कहा—मैं आपके सामने सत्य ही कह रही हूँ। हिन्दुस्तान में ऐसा कौन-सा दुःस्साहसी है, जो आपकी हुक्म अदूली कर सके, फिर ओरछा जैसा निर्बल राज्य भला कैसे साहस कर सकता था, दीने परवर मेरा तथा मेरे महाराजा का अहोभाग्य जो हम अदनों को जहाँपनाह ने याद फरमाया। इससे बडा सौभाग्य मेरा और क्या हो सकता था, जो प्रभु के चरणों के दर्शन मिले। यदि जहाँपनाह को मेरे शब्दों पर एतबार नहीं होता है; तो दासी चरणों में सिर झुकाये खड़ी है, कलम करा दीजिये। मेरे मुख से उफ तक न निकलेगा।

—मां बदौलत तुम्हारे जवाब से संतुष्ट हुए। अकबर ने नरम शब्दों में कहा—जैसा तुम्हारा रूप है, वैसी ही मधुर वाणी भी। तुम अच्छे मौके पर आई हो। मेरे सिपहसालार ने अहमद नगर फतह किया है। उसी की खुशी में ये जश्न हो रहा है। मैंने सुना है, तुम वीणा बहुत अच्छी बजाती हो। मांबदौलत की ख्वाहिश है कि तुम्हारी वीणा सुने।

अन्धे के हाथ बटेर, प्रवीण ने सोचा—ईश्वर ने अच्छा मौका हाथ लगाया, सम्भव है मैं कुछ कर सकूं। पहली बाजी तो हाथ लग ही गई। देखूं दूसरी का क्या परिणाम निकलता है और उसने अपने पग वीणा की ओर बढ़ा दिये। बैठने के पहिले उसने मस्तक झुका कर तीन बार शहनशाह का अभिवादन किया। हाथ में वीणा सँभाली। तारों को कसा। सब के देखते ही देखते उसकी अंगुलियाँ तारों पर लहरा उठीं। दीवाने आम में सन्नाटा छा गया। लोग मंत्रमुग्ध से सुनते रहे, सुनते रहे। अकबर आँखें बंद कर रसविभोर हो उठा। किसी को पता ही न चला कि कितना समय बीत गया। प्रवीण पसीना से तरबतर हो गयी। आज उसके जीवन और मौत का प्रश्न था। वह तान को तनाती ही गयी....तानती ही गयी। सब लोग अपने को भूल कर एक टक उसकी अँगुलियों का थिरकना ही देख रहे थे। वे ऐसे रसविभोर हो गये मानो ब्रह्मानन्द पा रहे हों। उनकी चेतना तब लौटी, जब वीणा का स्वर एक झटके के साथ रुका। सब के मुँह से वाह-वाह का स्वर फूट पड़ा। तानसेन अपने को सम्हाल न सके। मसनद से उठे और प्रवीण की अँगुलियाँ चूम लीं। बोले—ये हीरा अभी तक कहाँ धूल में छिपा था। ऐसा वीणावादन आज से पहले मैंने कभी नहीं सुना था। प्रवीण जैसा तुम्हारा नाम है, वैसा ही काम है। आज मेरा अभिमान तुमने चूर-चूर कर दिया। मैं तानसेन अभी तक अभिमान में भूला था कि मेरा सा वादक भारत में ही क्या, समस्त संसार में नहीं है।

तानसेन का नाम सुनते ही प्रवीनराय उठी। तानसेन के पैरों को छूने के लिए झुकी। तानसेन ना-ना ही करते रहे, पर उसने उनकी चरणरज माथे पर लगा ली और बोली—अभी तक तो आप का नाम ही सुना था, पर आज दर्शन पा कृतार्थ हो गयी। अनदेखे ही मैंने आपको अपना गुरु बनाया था। आपके नाम की ही शक्ति ने मुझे वीणा बजाना सिखाया। सोचती थी, कभी इस जीवन में आपके दर्शन पर सकूँगी या नहीं। ईश्वर ने मेरी मनोकामना सफल की। एक बार फिर उसने तानसेन के पैर छुये।

वीणा का स्वर टूटते ही शहनशाह को चेत आया। स्वर्गिक सुख से लौट फिर लौकिक धरा पर उतर आया। उसने प्रवीण राय को देखा फिर देखा और देखते ही रह गये। प्रवीणराय के रूप-सौन्दर्य को वीणा के आलाप ने और दमका दिया था। उसका रूप परिश्रम के कारण ऊषा-सा खिल गया। प्रवीण ने शहनशाह की आँखों में स्पष्ट देखा कि उनमें काम का ज्वार उठ रहा है। क्या वह मुझे लेकर ही छोड़ेगा, सोचते ही वह सिहर उठी। डरी भी, पर साहस न छोड़ा। मरता क्या न करता। उसने शहनशाह को अभिवादन किया। अकबर ने अपने गले से मोतियों की माला प्रवीण की झोली में डाल दी और आँखों में आँख डालते हुए बोला—जैसा हमारे रत्न तानसेन ने कहा है कि तुम अनमोल हीरा हो, इस हीरा को माँ बदौलत अपनी निगाहों के सामने ही रखना चाहते है। रहीम खाना–वह आगे बोला—तुम्हें मालूम है कि हमारा एक रत्न कुछ समय पहले अल्लापरवर का प्यारा हो गया था। एक रत्न की कमी न जाने कब से खल रही थी, आज अनायास वह नया रत्न

हमारे हाथ आ गया।—फिर प्रवीण की ओर आंख मोड़ कर बोला – जैसा मैंने तुम्हें सुना था, उससे अधिक ही पाया। एक कला में तो तुम खरी उतरी, दूसरा गुण भी मैंने तुम्हारा सुना है। तुम भाषा में कविता करती हो। मां बदौलत बानगी के रूप में चन्द शेर सुनना चाहते हैं।

प्रवीण ने झुक कर अभिवादन किया। सोचने लगी, चलो ईश्वर ने एक और मौका हाथ लगा दिया। बोली—मैं कविता करना क्या जानूं। जहां रहीम ऐसे महान कवि विद्यमान हैं, वहां मैं नाचीज क्या? फिर भी दीने परवर का हुक्म बजाना मेरा कर्त्तव्य है। आचार्य श्री कवि केशवदास के चरणों में बैठ कर कुछ तुकबन्दियां करने लगी हूं। कुछ पंक्तियों को भाषा के मर्मज्ञ दीनेपरवर को भेंट-स्वरूप पेश कर रही हूं। कविता पढ़ने के पहिले उसने अपने गुरु आचार्य केशवदास की मन में वन्दना की। शहनशाह, तानसेन रहीम आदि विद्वज्जन का अभिवादन कर कविता के बोल बोले—

बिनती राय प्रवीण की, सुनिये साह सुजान,
जूठी पातर भखत है, बारी बायस श्वान।

कविता की पंक्ति सुन रहीम से न रहा गया। झपटते हुए वे उसके पास गये। उसका माथा चूमा, उसके सिर पर हाथ रख बोले—आचार्य केशव की शिष्या को मैं क्या धन्यवाद दूं, पर इतना तो कहूंगा कि कि धन्य है बुन्देलखण्ड की माटी जहां कवि बनाया नहीं जाता, वरन् जन्म से ही पैदा होता है—

शहनशाह की आंखें फटी की फटी रह गई। उसकी आंखों से पर्दा हट गया। गद्गद् कण्ठ से बोले—प्रवीण, तूने मेरे मन की आंखें खोल दी है। तूने मेरे कानों में तो मंत्र फूंका है जिसे आज तक कोई न फूंक सका। आज से तू मेरी गुरु हुई। गुरु-दक्षिणा में तुझे जो मांगना हो, मांग ले। बाबर का वंशज तुझे सब कुछ देने को तैयार है।

—जहांपनाह, एक नाचीज को क्यों आसमान पर बिठा रहे हैं, जुगनू को सूरज होने का भ्रम करा रहे हैं। मेरी औकात ही क्या है।

—नहीं-नहीं प्रवीण, अकबर बीच ही में बोल उठा—जो मैं कह रहा हूं, वे कोरी बातें नहीं हैं। क्यों रहीम जी तुम्हारा क्या मन है? रहीम बोले—अन्नदाता वाजिब फरमा रहे हैं।

अभी यह वाक्य-युद्ध चल ही रहा था कि प्रवीण बोली—यदि दीनेपरवर मुझे कुछ देना ही चाहते हैं, तो हम आपकी प्रजा, न लेने वाले कौन।—फिर आगे बोली—ओरछा की तबाही आपके हाथों कभी न हो, बस यही दान मेरे जीवन के लिए बहुत है।—और उसने हाथ फैला दिए।

अकबर बोला—'प्रवीण धन्य है तेरी जननी को, जिसने तुझ जैसी कन्या

को जन्म दिया। रहीम जी—जब तक ये आगरा में रहना चाहें, इन्हें शाही मेहमान माना जाए जब और ये जायें, इन्हें एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ, बीस हाथी, सौ घोड़े, वस्त्र और आभूषण उपहार में दिये जायें।'

प्रवीण लावलशगर ओरछा के बाहर ही छोड़ अकेली घोड़ा पर सवार हो राजमहल की ओर चल दी। घोड़ा से उतरकर उसने प्रतिहारी से पूछा—महाराज कहां हैं?

प्रतिहारी ने शयनकक्ष की ओर इंगित कर दिया। वह चोरों की तरह चुपके-से महाराज के शयनकक्ष में प्रविष्ट हो गई। कुछ देर तो वह खड़ी-खड़ी उनको देखती रही। पर एकाएक उसका मन मचल उठा और उसने झुककर महाराज का चुम्बन ले लिया। महाराज बड़बड़ाये—ये कैसी बेहूदी हरकत है। किस बदतमीज ने ये साहस किया? कहते हुए उन्होंने आंखें खोल दीं। सामने खड़ी आकृति को देख उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने आंखों को मला, फिर मला। उसकी ये हरकत देख प्रवीण खिलखिला कर हंस पड़ी और हंसते हुए बोली—वो बदतमीज मैं ही हूं और चुम्बन लेने की बेहूदी हरकत इस दासी ने ही की।—और उनके वक्ष से लिपटकर उनकी बांहों में समा गई।

दो कार्तिक गीत / स्वर लिपि : रामकृष्ण चौरसिया

भई न बिरज की मोर, सखीरी मैं तो भई न बिरज की मोर ॥
कंहना रहती कंहना चुनती, कंहना करती किलोर ।सखी०॥
मथुरा रहती बिन्द्रावन चुनती, गोकुल करती किलोर ।सखी०॥
उड़ उड़ पंख गिरे धरनी पै, बीनत नगरी के लोग ।सखी०॥
इन पंखन के मुकुट बनाये, बांधत जुगल किसोर ॥सखी०॥

स्वरलिपि

ताल कहरवा (द्रुत लय)

स्थाई

स ग ग ग	म प धनी॒ धप	मप ग म प
भ ई न वि	र ज कीऽ ऽऽ	मोऽ ऽ र ज्ञ
धनी॒ ध प म	ग ग म म	पध ध प– प–
खीऽ री मैं तो	भ ई न वि	रऽ ज कीऽ ऽऽ
म म म म		
मो ऽ ऽ र		

अन्तरा

म प धनी॒ धप	म प म रे	रे रे म प
कं ह नाऽ ऽऽ	र ह ती ऽ	कं ह ना ऽ
ध नी॒ ध ध	नी॒ध पम ग ग	म प धनी॒ धप
चु न ती ऽ	कऽ हऽ ना ऽ	क र तीऽ किऽ
मप ग म प	ध ध प म	ग ग म म
लोऽ ऽ ल म	खी री में तो	भ ई ना वि
पध ध प– प–	म म म म	
रऽ ज कीऽ ऽऽ	मो ऽ ऽ र	

चलो आवै इक लरका मुकुट धरें ।
मोर मुकुट मोरे ठाकुर जू खां सोहै,
सो कलगिन बीच नचै री इक लरका, हंसै
री इक लरका मुकुट धरें ।
चंदन खोर मोरे ठाकुर जू खां सोहै,
सो टिपकिन बीच नचैरी इक लरका, हंसै री० ।
नैनन सुरमा मोरे ठाकुर जू खां सोहै,
सो भौंहन बीच नचैरी इक लरका, हंसै री० ।
कानन कुण्डल मोरे ठाकुर जू खां सोहै,
सो मोतिन बीच नचैरी इक लरका, हंसै री० ।
कंठन कंठी मोरे ठाकुर जू खां सोहै,
सो गोपन बीच नचै री इक लरका, हंसै री० ।
केसरिया झामा मोरे ठाकुर जू खां सोहै,
सो फेंटन बीच नचै री इक लरका, हंसै री० ।
कौंचन चूरा मोरे ठाकुर जू खां सोहै,
सो कंकन बीच नचै री इक लरका, हंसै री० ।
पाँवन तोड़ा मोरे ठाकुर जू खां सोहै,
सो घुंघरुन बीच नचै री इक लरका, हंसै री० ।

ताल-कहरवा (द्रुत लय)

स्थाई

		प ध॒
		च लो
मप प म ग॒	ग॒ म प ध॒	प म प म
आऽ बै इ क	ल र का ऽ	मु कु ट ध
ग॒ — — —		
रें ऽ ऽ ऽ		

अन्तरा

ग॒ म पध॒ पम	ग॒ म ग॒ स	स ग॒– ग॒ म
मो ऽ रऽ मुऽ	कु ट मो रे	ठा कुर जू खाँ
प ध॒ प पनी॒	नी॒ नी॒ नी॒ ध॒	प म प ध॒
सो ऽ हैं सोऽ	क ल गि न	बी ऽ च न

पम प म ग	ग म प ध	पध मप प म
नैऽ री इ क	ल र का ऽ	हेऽ सैऽ री इ
म ग स प	ध पम म प-	ग ग प ध
क ल र का	ऽ मुऽ कु टऽ	ध रें च लो

दो पर्व गीत

आई सरद रैन उजयारी / शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला'

चंदन देह गंध चम्पा की आई सरद रैन उजयारी।
बीर किसान रामरघुबर नें खेतन में रावन कों मारो
जरिया बिरिया चारौ झकरा हर वक्खर सें खोद निकारो
पड़आ खेत भुरभुरी माटी तापै लोटे बण्डा हाथी
लई महूरत नारीं रोपीं ब्रह्मा बने बैल के साथी
रामा ढ़ोला तानें गूंजीं नरहा पीतम बौका प्यारी।
जुनरी ज्वान भई इठल्यावै पत्तन की लहराय चुनरिया
भरी गवोट देह गदरानी बरसाने की नवल गुजरिया
मूंग बाजरा भेंट कर रये राहर बिटिया खाय गुलाँटें
अम्यारी सनई घर फूलीं खेत बने फूलन की हाटें
फूले भटा टिमाटर छुटके हरी-भरी है क्यारी-क्यारी।
आँगन दोर चौंतरा लीपे ढ़िग दै दै कें चौक निकारे
पोती कलई करे रंगरोंगन घर के रोग-दोख सब झारे
मँगरे पै जउआ लौंकी के छपरा ऊपर फरी तुरैंया
रस भर कें ऊँखें गुठल्यानी औंरन सें लद गई डरैंया
कढ़े गदेला और सुपेती डुकरो नें कथरी सीं डारी।

—उरई, उ० प्र०

दिवारी जगमग भई / भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

सूरज को कम गओ घाम, दिबारी जगमग भई।
ओसन झला परत भुंसारें
चैन कहाँ कतिकी के मारें
नई उमंग नर-नारी धारें
घर-घर आये नये धान, दिबारी जगमग भई।
बिन चंदा की दुखीं तरइयाँ
नदियन-तालन में परछइयाँ
छुअत हिंडोरो पारन मइयाँ
गुख बगरो चारउ ठाम, दिबारी जगमग भई।
खेत किसान बनाकें बोये
दिन जागे रातन नई सोये
लगे रहे तन की सुध खोये
सुरसा सो बढ़ चलो काम, दिवारी जगमग भई।
उननें कातिक मास अनाये
लगत सुहाने कातिक गाये
हमखाँ छोड़ श्याम काँ छाये
जा बसे द्वारका धाम, दिवारी जगमग भई।
ऊधौ बचन एक नई सुनबी
सुनौ स्याम अपने मन गुनबी
अब नई मीत काउ के बनबी
बिसरा बैठे घनश्याम, दिबारी जगमग भई।
जगमग जोत दिबारी आवै
मन सनेह भर दिया जरावै
उनखाँ कैसें परब सुहावै
बहुरे नइयाँ सुखधाम, दिबारी जगमग भई।
मन के मीत मिले नई आकें
पंथ निरखतीं अँखियाँ थाकें
चैन किये भओ नेह लगाकें
जागत रये रैन तमाम, दिबारी जगमग भई।

—महोबा, हमीरपुर उ० प्र०

बुन्देलखंड का सांस्कृतिक भूगोल एवं नियोजन | डॉ० ए० एन०

बुन्देलखण्ड प्रदेश के सीमांकन के भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक तीन आधार है। भौगोलिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड प्रदेशांतर्गत मध्यप्रदेश का छतरपुर, टीकमगढ़, दतिया तथा पन्ना (पवई तहसील रहित) जनपद एवं भिण्ड एवं ग्वालियर जनपदों की क्रमशः लहार तथा भाण्डेर तहसीलें सम्मिलित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के बांदा, हमीरपुर, जालौन, ललितपुर तथा झाँसी जनपदों को भी सम्मिलित किया जाता है।[1] प्रस्तुत अध्ययन में बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक भूगोल का उसके क्षेत्रीय नियोजन के विशिष्ट सन्दर्भ में विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

मानव से सम्बन्धित प्रत्येक अध्येतव्य विषय में अर्थ व्यवस्था के अनुशीलन के साथ-साथ समाज के अनेक सांस्कृतिक तत्वों के गहन अध्ययन की अपेक्षा अपरिहार्य है। ऐसा अध्ययन पूर्णतः शैक्षिक प्रकृति का ही नहीं, प्रत्युत् क्रिया-परक भी होना चाहिये तथा सामान्य समस्याओं से सम्बन्धित समन्वित विश्लेषणों एवं बहुविषयों के अध्ययन से व्युत्पन्न सुझावों पर भी आधारित होना चाहिये।

भूगोल प्रमुखतः एक ऐसा व्यावहारिक विज्ञान है, जिसमें क्षेत्र या प्रदेश के सांस्कृतिक तत्वों की अवहेलना सम्भव नहीं है। भूगोल की 'विशुद्ध' तथा 'व्यावहारिक' शाखाओं के मध्य विचारों, प्रविधियों, तथा परिणामों के पारस्परिक विनिमय में क्षेत्रीय सांस्कृतिक तत्वों के विश्लेषण को उपयुक्त स्थान प्रदान किया जाने लगा है। परिणाम स्वरूप दोनों शाखाओं के उद्देश्यों तथा संदर्शों में परिपक्वता एवं गहनता आती जा रही है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भूगोल में नूतनशोध प्रविधि, नव्य विषय सामग्री तथा नवीन पद्धति के आगमन से अमरीकी भूगोलवेत्ता पीटर नाश ने इसे एक नया नाम 'मैगाजिऑग्रेफी'[2] भी प्रदान किया है। इसका केन्द्रबिन्दु समूह व्यवहार है। उदाहरणार्थ, बुन्देलखंड क्षेत्र के भूमि-उपयोग पर इस प्रदेश के निवासियों की

आशा-आकांक्षाओं, आस्थाओं, मान्यताओं, दृष्टिकोणों, पूर्वाग्रहों एवं नियमों की अवहेलना कर भूमि-उपयोग नियोजन-कार्य सम्पादन में आशातीत सफलता नहीं प्राप्त हो सकती है। इसलिये नियोजकों को सांस्कृतिक भूगोल के तत्वों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। इन तत्वों के ज्ञान से न केवल भौगोलिक अवबोध में वृद्धि होगी, अपितु भूमि-उपयोग नियोजन में अन्तर्दृष्टि का भी विकास होगा।

बुन्देलखंड की संस्कृति काफी प्राचीन है। इसे अत्यन्य गतिशील एवं प्रतिक्षण परिवर्तनशील मानकर क्षेत्रीय नियोजन में इसके प्रभाव को नकारने से अभीप्सित परिणाम प्राप्त करना दुरूह एवं दुष्कर होगा। इस परिप्रेक्ष्य में यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या सांस्कृतिक तत्वों में गतिशीलता एवं परिवर्तनशील अल्प समयावधि में नहीं आती। बुन्देलखंड सदृश प्राचीन भौगोलिक प्रदेश में तो क्षेत्रीय नियोजन पर यहाँ के सुस्थिर सांस्कृतिक तत्व काफी अरसे तक अपना प्रभाव डालते रहेंगे।

बुन्देलखंड क्षेत्र भारत में ही नहीं, अपितु दाक्षिणी पूर्वी एशिया में एक पिछड़ा प्रदेश है। ऐसे क्षेत्रों में सांस्कृतिक तत्व अपना विशेष महत्व रखते हैं। तीव्रगामी जटिल परिवर्तन की योजना के निर्माण एवं क्रियान्वयन में प्रयास के पूर्व हमें इस पर विचार करना पड़ेगा कि क्या इस क्षेत्र के सम्पूर्ण निवासी त्वरित गति से अपना अनुकूलन कर सकते हैं? क्या उनके चिरंतनकालीन अनुभूतिजन्य संस्कार उसे सहज भाव से अंगीकार कर सकते हैं? यहाँ का निवासी विकासशील परिवर्तन से प्रादुर्भूत सांश्लेषिक वातावरण की आवश्यकता को स्वीकार सकता है, बशर्ते उसके मूलभूत सांस्कृतिक तत्वों को यथोचित स्थान भी प्रदान किया जाय।

भूगोल 'आवेष्टन' के एक नये युग की ओर अग्रसर हो रहा है। आधुनिक भूगोल समस्या तथा क्रिया-परक है। यदि भूगोल तथा आयोजन में विधेयात्मक तथा सार्थक सम्बन्ध करने हैं, तो दोनों को परस्पर स्वीकृत आधारों पर कार्य करना पड़ेगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सांस्कृतिक भौगोलिक तत्वों के परिप्रेक्ष्य में बुन्देलखंड की जनांकिक संरचना तथा जनसंख्या के प्रयासी प्ररूप, गृह तथा परिवार के अध्ययन एवं उसके नियोजन की आवश्यकता अपरिहार्य है।

सांस्कृतिक भूगोल, भूगोल की एक विकासशील शाखा है। इसकी कुछ संकल्पनाएँ एवं अवधारायें हैं। इन संकल्पनाओं एवं अवधारणाओं के आधार पर बुन्देलखंड के सांस्कृतिक भूगोल का विश्लेषण करना अधिक उपयुक्त होगा। बुन्देलखंड की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति ने यहाँ के निवासियों पर

अपनी अमिट छाप अंकित की है। उच्चावच की दृष्टि से यहाँ का धरातल विषम एवं विविध ढालयुक्त है। यहाँ दुर्गम घाटियाँ तथा कगारी पहाड़ी क्षेत्र भी हैं। मिट्टी कठोर एवं अनुर्वर है। उपर्युक्त भौगोलिक परिस्थिति के कारण यहाँ के निवासियों का जीवन संघर्षशील है। उपर्युक्त कारणों से यहाँ के निवासियों में यह संस्कार समा गया है कि वे वसुन्धरा को वीरभोग्या मानते है, इस अमिट संस्कार का प्रभाव यहाँ के अधिकांश निवासियों के क्रिया-कलापों से परखा जा सकता है। उपर्युक्त भौगोलिक स्थानीय शक्तियों का प्रभाव मानव द्वारा अंगीकृत विशिष्ट प्रक्रियाओं में परिलक्षित होता है।

एक समान धरातलीय दशायुक्त स्थानों तथा समान गुणों वाले व्यक्तियों के स्थानिक वितरण से यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि उनमें एक विशिष्ट साहचर्य भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ, एक समान धरातलाकृतिक स्थानों में एक समान गुण एवं स्वभाव वाले व्यक्ति पाये जाते हैं। इस प्रकार के स्थानिक वितरण का अध्ययन उसके घनत्व, विक्षेपण एवं प्रारूप के सन्दर्भ में किया जा सकता है। क्षेत्रीय नियोजन में इन तत्वों का महत्व अपरिहार्य है।

बुन्देलखण्ड में स्थानिक पारस्परिक क्रिया का स्पष्ट उदाहरण विद्यमान है क्योंकि पूरे क्षेत्र में एक स्थान से दूसरे स्थान को वस्तुओं, विचारों एवं मनुष्यों की गतिशीलता दृष्टव्य है। मनुष्यों की गतिशीलता प्रमुखतः मौसमी है। संस्कार युक्त विचारों की गतिशीलता के उदाहरण भी मिल जाते हैं। वस्तुओं की जिस प्रकार की गतिशीलता किसी विकसित क्षेत्र में पाई जाती है, वैसी गतिशीलता का यहाँ अवश्य अभाव है। यहाँ के संस्कार वस्तुओं को अधिकाधिक गतिशीलता प्रदान करने में सहायक नहीं रहे। यह संस्कारजन्य तथ्य ही है कि यहाँ के अनेक निवासी प्रतिशोधात्मक विचार से प्रभावित रहते हैं।

भौगोलिक प्रदेशिक संकल्पना की दृष्टि से इस क्षेत्र में कई ऐसे भाग हैं, जहाँ समांगता का दर्शन होता है। उदाहरणार्थ, यदि बुन्देलखण्ड क्षेत्र को दो प्रमुख भौगोलिक उपप्रदेशों में यथा—बुन्देलखण्ड मैदान एवं बुन्देलखण्ड उच्च भूमि में विभाजित करें, तो प्रथम विभाग के अन्तर्गत बाँदा, हमीरपुर जालौन आदि के मैदानी भाग तथा द्वितीय विभाग के अन्तर्गत पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़ आदि के उच्चभूमि क्षेत्र सम्मिलित किये जा सकते हैं। और इनमें समांगता देखी जा सकती है। इन दोनों क्षेत्रों के सांस्कृतिक तत्वों में अन्तर भी देखा जा सकता है। अतः आर्थिक नियोजन में इन सारभूत तत्वों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक भूगोल के अध्ययन में क्षेत्रों की आन्तरिक

सम्बद्धता का उल्लेख भी आवश्यक है। यह क्षेत्र पहाड़ी बहुल है। पहाड़ियों के निम्नवर्ती मन्द ढालों पर ग्रामीण बस्तियों की अवस्थिति तथा अपेक्षाकृत निचले क्षेत्रों में कृष्य भूमि का स्थल एवं उपयुक्त स्थानों पर बने क्षेत्रों का पाया जाना आन्तरिक सम्बद्धता की संकल्पना को चरितार्थ करता है। यहाँ की अधिकांश ग्रामीण बस्तियाँ सदियों से पुरवा-विहीन हैं। सघनता इनकी दूसरी प्रमुख विशेषता है। इतना ही नहीं अपितु जाति-आधारित बस्तियों का भी यहाँ नितान्त अभाव है। उपर्युक्त विशेषता वाली इस क्षेत्र की ग्रामीण बस्तियाँ एक विशिष्ट सांस्कृतिक भू-दृश्य उपस्थित करती हैं। नवीन बस्ती नियोजन की दृष्टि से इन विशिष्टताओं का अध्ययन करना तथा तदनुकूल नया क्षेत्रीय नियोजन प्रस्तुत करना विशेष अभीष्ट एवं उपयोगी होगा। इस क्षेत्र के निवास स्थल अर्थात् आवास की दशायें, यहाँ के भौगोलिक वातावरण मात्र पर ही आधारित नहीं है, बल्कि यहाँ की जनता के चरित्र, स्वभाव, संसाधनों के उपयोग तथा विभिन्न प्रक्रियाओं के संयुक्त परिणाम हैं।

ग्रामीण बस्तियाँ बुन्देलखण्ड की संस्कृति को तो अपने अंक में समेटे हुए ही हैं, पर नगरी बस्तियों पर भी बुन्देली संस्कृति की छाप देखी जा सकती है। इस भौगोलिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में स्थित झाँसी, ललितपुर, छतरपुर, टीकमगढ़, बाँदा, हमीरपुर उरई, महोबा, पन्ना इत्यादि अनेक नगरों में पुराने समय के ऐसे अनेक भवन मिलेंगे, जिनके मुख्य द्वार छोटे हैं तथा खिड़कियाँ कम एवं लघु आकारीय हैं। इन विशिष्ट प्रकार के भवनों के निरीक्षण एवं प्रेक्षण से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके निर्माण एवं स्थापत्य कला पर भौतिक वातावरण की अपेक्षा सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव अधिक है। छोटे मुख्य द्वार एवं संकीर्ण खिड़कियों तथा गवाक्षों के पाये जाने का कारण तत्कालीन असुरक्षामय वातावरण रहा। कालान्तर में असुरक्षा की भावना तो निरन्तर कम होती गई, परन्तु भवनों के दरवाजों एवं खिड़कियों की स्थापत्य कला में उतना परिवर्तन नहीं हुआ। फलस्वरूप आज भी नगरों में पुरानी शैली के भवन दृष्टव्य है। वर्तमान नगर नियोजन में इस सांस्कृतिक तत्व के प्रभाव को त्यागा जा सकता है।

बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक मूल्यांकन की दृष्टि से यह कहना विशेष उपयुक्त होगा कि काफी अरसे तक भौतिक वातावरण तथा उससे उद्भूत सांस्कृतिक तत्वों ने यहाँ के मनुष्यों को एक ही ढाँचे में रखा क्योंकि इस क्षेत्र के प्रौद्योगिकी की दृष्टि से अविकसित होने से यहाँ के निवासी प्रकृति द्वारा निर्धारित एवं निश्चित सीमाओं में अपनी छाँट अर्थात् चयन का प्रयोग यथानुकूल न कर सके। अस्तु नियोजकों से अपेक्षा की जाती है कि वे बुन्देलखण्ड क्षेत्र के मानवीय

संसाधनों की क्षमता एवं योग्यता के विकास पर अधिक बल दें। परन्तु इस कार्य के सम्पादन में बुन्देली संस्कृति की महत्ता को नजरन्दाज न करें। इस क्षेत्र की आर्थिक उन्नति के लिये यहाँ के निवासियों की तकनीकी दक्षता, सामाजिक साहचर्य, आर्थिक संगठन और प्रशासनिक निपुणता अपेक्षित है। क्षेत्रीय नियोजन में प्रशासनिक भागों की अपेक्षा सांस्कृतिक क्षेत्रों को आधार इकाई मानकर नियोजन का अच्छा ढाँचा प्रस्तुत किया जा सकता है। बुन्देलखण्ड की प्राचीन सांस्कृतिक वैभव एवं गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये नियोजन में उपर्युक्त प्रभावी तत्वों के अस्तित्व को स्वीकारना परम वांछनीय है।

सन्दर्भ सूची :

१. आर० एल० सिंह : (सम्पादक), 'ए रीजनल ज्यॉग्रफी', १९७१, पृष्ठ ५९७.

२. एफ० ई० हैमिल्टन : (सम्पादक), 'एप्लीकेशन्स आफ मैगा जिऑग्राफिकल कन्टेन्ट्स ट्वान्टिअथ इन्टर नेशनल जिऑग्राफिकल कांग्रेस, ऐब्स्ट्रक्ट्स आफ पेपर्स, नेलसन, लन्दन, १९६४, पृष्ठ १७०-७१.

३. ए० एन० सिंह : 'सोशिओ-कल्चरल एण्ड स्पेशियल एलीमेन्ट्स इन रूरल डेवेलपमेन्ट इन छतरपुर डिस्ट्रिक्ट', दि डेकन ज्याग्रफी, अंक XV, संख्या १, १९७७, पृष्ठ १९७-२०८.

प्रबोधचन्द्रोदय चन्देलकालीन संस्कृति /

डॉ० वीरेन्द्र कुमार जैन

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र यति हैं। यह जेजाक भुक्ति (बुन्देलखण्ड) के चन्देल राजा कीर्तिवर्मा के शासनकाल में हुए हैं। कीर्तिवर्मा का एक अभिलेख १०९८ ई० का प्राप्त होता है। प्रबोधचन्द्रोदय की प्रस्तावना में उल्लेख है कि श्री मान गोपाल के आदेश से राजा कीर्तिवर्मा की उपस्थिति में इसका अभिनय किया गया। इतिहास से ज्ञात होता है कि १०४२ ई० में गोपाल ने कीर्तिवर्मा को उसका हारा हुआ राज्य प्राप्त कराया था। गोपाल सम्भवतः उसका सेनापति था। अतः कृष्ण मिश्र का समय १०५० ई० के लगभग सिद्ध होता है।

यह किंवदन्ती सुनी जाती है कि ये दण्डी यति थे और छात्रों को नाना विषयों का अध्यापन करते थे। ये अपूर्व विद्वान थे। कहा जाता है कि उनके अनेक शिष्यों में से एक अध्यात्म विद्या के विषयों से पराङ्मुख था। उसकी रुचि केवल काव्य, अलंकार, नाटक इत्यादि विषयों में केवल श्रृङ्गारपरक ही थी। उसी शिष्य को प्रबोधित करने के मिस से ही परमकारुणिक श्री कृष्ण यति ने इस वेदान्त सिद्धान्त को उद्घाटित करने वाले नाटक का निर्माण किया।[२]

यद्यपि शुद्ध नाट्य कला की दृष्टि से यह नाटक बहुत सफल नहीं है, तथापि इसका उद्देश्य उत्तम है। इसमें नाटक के माध्यम से दार्शनिक विषयों का सरल, सरस और प्रवाहपूर्ण रोचक भाषा में वर्णन किया गया है। कठिन दार्शनिक भावों को छोटे-छोटे पद्यों में सरल रूप में समन्वित किया गया है। इसमें वेदान्त के ब्रह्मवाद और वैष्णव भक्ति का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है। इसमें शान्त रस प्रधान है। अहंकार, दंभ, चार्वाक आदि की उक्तियों में हास्य का पुट है। इसके दार्शनिक पद्य प्रभावशाली और मार्मिक हैं। इसमें

जीवात्मा को कर्ता, कर्मफलभोक्ता आदि तथा साक्षी, कर्मफलदाता असंग बनाना गया है। नाटक का निष्कर्ष यह है कि पुरुष मोहाकार के नष्ट हो जाने पर विश्वात्मक विष्णुरूप को प्राप्त होता है। इस नाटक में सभी नाटकीय तत्व प्राप्त होते हैं।

अमूर्त गुणों को पात्र बनाकर लिखा गया यह प्रथम नाटक है। यद्यपि कथाकाव्यों में इस रूपक शैली का प्रयोग पहले भी होता रहा है। प्रबोधचन्द्रोदय के बाद संस्कृत में इस शैली पर अनेक नाटक लिखे गये। इनमें यशपाल कृत 'मोहराजपराजय' १३ वीं शताब्दी[1] कवि कर्णपूर कृत 'चैतन्य चन्द्रोदय' १६ वीं शताब्दी आदि कुछ उल्लेखनीय रचनायें हैं। ये स्पष्टतः प्रबोधचन्द्रोदय से प्रभावित हैं।

इस नाटक का धार्मिक और दार्शनिक महत्व तो स्पष्ट ही है, पर सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, आर्थिक, लौकी मनोरञ्जन आदि की सूचनाओं के लिए भी है। यही कारण है कि इस नाटक के जितने हिन्दी भाषा में अनुवाद हुए उतने संस्कृत के किसी अन्य नाटक के नहीं हुए। नाटक के इतिवृत्त से पता चलता है कि समाज में फैले हुए धार्मिक पाखण्ड को दूर करके समाज को आगे बढ़ाना और मनुष्य को सद्गुणों की ओर ले जाना ही इस नाटक का मुख्य उद्देश्य था। धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों का इस रचना से विशेष लगाव रहा। नीचे दी गई इस नाटक के अनुवादों की तालिका इसके सांस्कृतिक महत्व की सूचना प्रदर्शित करती है।[2]

१. सन् १५४४ मल्ह कवि, २. १६४३ जसवन्त सिंह, ३. सन् १६६९ ब्रजवासी दास ४. ब्रजवासी अनन्य ५. १७४३ ई० सुरतिमिश्र, ६. १७८३ ई० आनन्द, ७ १७८९ ई० नानकदास, ८. १७८९ ई० गुलाब सिंह, ९. १७७७ ई० घोकल मिश्र, १०. १८७२ तृतीय अंक मात्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ११. १८७० ई० शीतला प्रसाद, १२. १८८५ ई० अयोध्या प्रसाद चौधरी, १३. १८९४ ई० सुखदेव दुबे, १४. १९०८ ई० कार्ष्णि गोपालदास १५. १९२५ ई० विजयानन्द त्रिपाठी, १६. १९३२ ई० महेश चन्द्र प्रसाद।

कुछ रचनायें प्रबोध चन्द्रोदय का अंशतः आश्रय लेकर लिखी गई हैं। डा० देवेन्द्र कुमार ने प्रबोध चन्द्रोदय की एक मौलिक विशेषता बताते हुए लिखा है कि यह एक दृष्टि से निराला नाटक है। इसमें गुण, प्रवृत्ति और भावों को मूर्त करके पात्र बनाया गया है। विवेक, श्रद्धा, महामोह, विष्णु भक्ति आदि इसके पात्र हैं। दिगम्बर, कापालिक आदि कुछ पात्र अपने वर्ग

का स्वरूप प्रकट करने वाले 'टाइप' पात्र हैं। नाटक की इसी विशेषता के कारण अंग्रेजी के लेखकों ने इसे 'एलेगोरिकल' नाटक कहा है। हिन्दी में इसे रूपक शैली या प्रतीकात्मक शैली का नाटक कहा गया है।

दार्शनिक-धार्मिक महत्व

प्रबोध चन्द्रोदय में अनेक धर्मों और मतों का तथा उनके बाह्य आचार का सतही रूप में खंडन या विडम्बन किया गया है। इनमें दिगम्बर जैन, बौद्ध, कापालिक, चार्वाक आदि का प्रधानतया खंडन या विडम्बन किया गया है। इससे उस समय उनके इस बुन्देलखण्ड भू भाग में प्रचलित रहने की पर्याप्त सूचना मिलती है। साथ ही यह भी कि सम्भवतः वैष्णवमत के प्रचार कार्य में लेखक को ये मत या दर्शन ही अधिक बाधक दिखाई देते थे। इस नाटक का सम्पूर्ण तृतीय अंक दिगम्बर जैन, बौद्ध और कापालिक मतों की आलोचना के लिए समर्पित है। इन्हीं को पाखण्ड कहकर स्मरण किया गया है।

जब करुणा और शान्ति श्रद्धा की खोज में निकलती हैं, तो उन्हें सर्वप्रथम दिगम्बर जैन साधु (क्षपणक) दिखाई दिया। जैन मत के अनुयायियों को आज की ही भांति श्रावक कहा जाता था। दिगम्बर जैन धर्म के अपरिग्रह सिद्धान्त के परम निदर्शन नग्न स्वरूप को देखकर, केशलुंचन की क्रिया और संयम, जीव दया के साधन मयूरपिच्छिका को उनके हाथ में देखकर तथा अस्नानव्रत के पालन हेतु मलिन शरीर धारण करने के कारण, उनका उपहास और निन्दा करते हुए उन्हें राक्षस, दुर्दर्शन, निर्वीर्य, पिशाच, नारकी आदि लगभग गाली गलौज की भाषा का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्रों के लिए नियमित प्राकृत भाषा के द्वारा उनसे संभाषण कराया गया है। यद्यपि यह भी सत्य है कि जैनों ने प्राकृत भाषाओं को अपने धर्म प्रचार का सबल साधन जानकर ही अपनाया था। उनके दर्शन का परिहार करने को कहा गया है।

यह स्मरणीय है कि नग्नत्व, अस्नानव्रत, मयूरपिच्छिका आदि जैन धर्मानुमोदित बाह्याचार में मुनियों के लिए विहित है।[4] पंच परमेष्ठियों में अरिहन्त प्रथम हैं जिनका उल्लेख है। शरीर पुद्गल पिण्ड है जिससे सदा ही मल प्रवाहित होता है। उसकी कितने ही जल से शुद्धि सम्भव नहीं, तथापि आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, वही जानने देखने योग्य है। इन दार्शनिक बातों का उल्लेख है।

जैन मुनियों के आचरण पर कुत्सा और दूषण दिखाने के लिए कहा गया कि यदि वे परदाराओं से रमण करें तो श्रावकों को ईर्ष्या नहीं करनी

७

चाहिए।[५] इतना कहने के बाद दिगम्बरों की श्रद्धा को तापसी श्रद्धा कहा गया है और वह श्रावकों के कुल से दूर न हटे, ऐसा जैन मुनि ने तामसी श्रद्धा को आदेश दिया। तामसी श्रद्धा दुराचारिणी और दुर्दर्शना होती है।

बौद्ध धर्म और दर्शन

बौद्ध सौगत कहलाते थे और बिहारों में रहते थे। बौद्ध भिक्षु अपने अनुयायियों को अर्थात् उपासकों और अन्य भिक्षुओं को क्षणिकवाद का उपदेश देते थे।[६] प्रबोधचंद्रोदय में बौद्ध भिक्षुओं के चारित्रिक पतन की सूचना में उन्हें भूलयन गुफाओं में रहनेवाला, वणिक नारियों से रमण करने वाला, समयानुकूल मधुर इष्ट भोजन करनेवाला, कोमल शय्या पर सोने वाला, युवतियों से घिरा रहनेवाला, उनके साथ रति करने वाला, क्रीड़ा और आनन्द रसों से चन्द्रिकोज्ज्वल रात्रियाँ बिताने वाला कहा गया है।[७]

बौद्ध भिक्षु लम्बा तड़ंगा, काषाय वस्त्र लिए, मुण्डित मस्तक-अनात्मवाद का उपदेश देता है। यदि भिक्षु उपासकों की स्त्रियों से रमण करें तो ईर्ष्या न करने का उपदेश देता है। चित्त में मैल आना ही ईर्ष्या है। बौद्धों की श्रद्धा भी तामसी है। भिक्षु श्रद्धा को आदेश देता है कि तुम उपासकों और भिक्षुओं से सदा लिपटी रहो।

बौद्ध, जैन और कापालिकों को इस अंक में पारस्परिक विवाद करते हुए दिखाया गया है। शान्तिपूर्ण तरीके से सर्वज्ञता, आत्मा, लोक-परलोक, मोक्ष, ज्योतिष आदि विषयों सर्वज्ञ बुद्ध आदि की प्रामाणिकता के विषय में दार्शनिक विवाद करते हैं। बौद्ध भिक्षु ने दिगम्बर क्षपणक से कहा कि दिगम्बर मत बहुत कष्ट साध्य है।[८] इस प्रकार दोनों ही की आलोचना करके दिगम्बर जैन मत को लोक-परलोक से विरुद्ध और सौगत मत को साक्षात सुखावह परलोक-विरुद्ध कहकर उपसंहार किया गया है।

कापालिक मत या सीमा सिद्धान्त

कापालिक मतानुयायी मनुष्यों की अस्थिमाला गले में पहनते थे, श्मशान में रहते थे, नरकपाल में भोजन करते थे, योग-साधना करते थे और दिव्य दृष्टि पाते थे। क्षपणक के पूछने पर कापालिक अपने धर्म का स्वरूप बतलाता है।[९]—'मस्तिष्क की आँतों और वसा से युक्त महामांस की अग्नि में आहुतियाँ करना, मनुष्य के कपाल में सुरापान करना, नरबलि देकर ताजे गरम खून से महाभैरव की उपासना अर्चना करना।' कापालिक का कथन सुनकर क्षपणक उद्विग्न होकर बोला—'बिचारे को किसी ने धोखा देकर ठग लिया है।' इस पर कापालिक ने सीमा सिद्धान्त की महिमा बतालाकर जब इन्द्रजाल जैसे चमत्कार दिखाने की बात की और उसपर भी जब जैन साधु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब वह तलवार खींचकर क्षपणक को मारने को उद्यत हुआ। कापालिक ने कहा—'अभी तेरा शिर काट कर डमरू बजाते हुए भूत गणों के साथ देवी महाभैरवी की तेरे गरम खून से तृप्ति करता हूँ।', इतना सुनकर क्षपणक भाग कर बौद्ध भिक्षु की शरण में आया। बौद्ध भिक्षु ने कापालिक को समझाया और कहा कि यह तो बावकलत चल रही थी। इस बेचारे को मारना ठीक नहीं है। तब उसने तलवार वापस रखली। शान्त हो जाने पर भिक्षु, क्षपणक और कापालिक सौख्य और मोक्ष के विषय में वाद-विवाद करते हैं।

कापालिक मत के अनुसार बिना विषयों भोगों के उपभोग सुख सम्भव नहीं है। बिना विषय भोगों के जो सुख या मोक्ष होगा, उसकी तुलना उपलावस्था से की गई है। कापालिक के आराध्य भवानीपति शंकर स्वयं देवी पारवती से आलिंगित हैं। तब क्षपणक सरागी और सशरीरी की मुक्ति के विषय में शंका करता है। इस पर कापालिक ने कापालिनी रूप धारणी राजसी श्रद्धा को भिक्षु और क्षपणक के पास भेजा। उससे आलिंगित होते ही उन दोनों ने कापालिक का कुलाचार्यत्व स्वीकार कर लिया।[१०]

महाभैरव के अनुशासन में नारी सेवन और सुरपान प्रधान थे। पहिले कापालिक की जूठी सुरा पीने में बौद्ध और जैन भिक्षु कतराते हैं, किंतु बाद में जब उसे कापालिनी जूठी करती है, तो दोनों सानन्द पी लेते हैं। सुरा की महिमा बहुत अधिक थी—'वह अमृत भवभेषज पशुपाशसमुच्छेद का कारण अर्थात् जीव को बन्धन मुक्त करने वाली थी।[११]

इस मत में विषय सेवन करते हुए अष्ट महासिद्धियाँ मारण, मोहन उच्चाटन आदि प्राकृत सिद्धियाँ सहज और सुलभ हैं। इस प्रकार जैन बौद्ध और कापालिक महामोह के किंकर सिद्ध होते हैं। क्षपणक की गणना के अनुसार सतोगुणी श्रद्धा विष्णुभक्ति के साथ महात्माओं के हृदय में ही रहती है।[१२]

चार्वाक मत

चार्वाक मत का प्रतिपादन और खण्डन करते हुए बतलाया गया है कि वर्ण-विचार, धन, स्त्री आदि का स्वपर भेद विचार करने वाले तथा हिंसा स्त्री, परधन आदि का ग्रहण-अग्रहण का विचार करने वाले निष्पौरुष हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी निरर्थक हैं।[१३] वेद यज्ञ क्रिया आदि वृथा हैं।

अन्य मत और दर्शन

दम्भ के प्रताप का बर्णन करते हुए उस समय के धूर्त, धोखेबाज साधु-

शन्यासियों का निरूपण किया गया है। ये साधु-सन्यासी दिन में अपने को सर्वज्ञ, दीक्षित, अग्निहोत्री, ब्रह्मज्ञ, तापस आदि कहते थे और रात्रि में सुरा-सुन्दरियों में मग्न रहते थे। [14]प्रभाकर गुरु के मत, कुमारिल भट्ट का दर्शन, शारिका गुरु के सिद्धान्त के अध्ययन, वाचस्पति मिश्र की पूर्वमीमांसा का ज्ञान, महोदधिनामक आचार्य का सूक्त, गुरुमुख से माहाव्रती सूक्ष्म वस्तुतत्व का प्रवचन आदि का उल्लेख है। जिन्हें इनका परिचय नहीं है, वे नर रूप में पशु ही हैं, क्योंकि आहार, निद्रा, भय और मैथुन क्रियाओं की दोनों में समानता है। मनुष्य में पशुओं की अपेक्षा ज्ञान या धर्म हो पृथक्कारी तत्व है।[15]

वैदिकों, वेदान्तियों, बौद्धों, शैव, पाशुपत, शाक्त साधुओं तथा अन्य दम्भी, अहंकारी साधुओं का भी उल्लेख है।[16]इन्द्र, ब्रह्मा, वशिष्ठादि मुनियों, परमेष्ठियों, मुनियों आदि का उल्लेख है और यह कि ये सभी अहंकार और दम्भ के शिकार हैं।[17]

स्मरणीय है कि लेखक ने अन्तिम तीन अंक का ही नामकरण किया है यथा—४. विवेकोद्योग, ५. वैराग्यप्रादुर्भाव, ६. जीवन्मुक्ति। प्रतीत होता है कि अपने मूल लक्ष्य का लेखकों ने इसी प्रकार संकेत कर दिया है और प्रथम तीन अङ्कों का नामकरण नहीं किया। अन्तिम अङ्क में लेखक ने वैदिक धर्म और दर्शनों की एकता का प्रतिपादन किया है कि यदि उनका समान प्रतिपक्षी हो तो उन्हें विरोध छोड़कर एकमत हो जाना चाहिये क्योंकि उनका मूल एक ही वेद है। [18]आस्तिक दर्शनों का उपास्य एक ही है, उसे ही ये दर्शन नाना नामों से कहते है। [19]आस्तिक और नास्तिक दर्शनों के युद्ध में आस्तिक दर्शन विजयी हुए और नास्तिक दर्शन पराजित हो गये। सद्गुण सेनापतियों से असद्गुण सेनापति हार गये। मन को शांत विषय के विचार में लगाना चाहिए और शांत विषय भगवान हरि के सगुण या निर्गुण रूप का चिंतन है। [20] एक ही देव नाना रूपों में दिखता है, शांत वह चुप होने पर वही एक है। विष्णु के दश अवतारों का भी उल्लेख है। यह सभी वैष्णव दर्शन एवं धर्म का प्रतिपादन है।

सामाजिक दशा

यह सम्पूर्ण नाटक अमूर्त तत्वों गुणों, भावनाओं आदि को लेकर लिखा गया है, अतएव संस्कृत भाषा में इन भावों, गुणों आदि के जो वाचक शब्द जिन लिंगों में हैं, प्राय: उन्हीं के अनुसार उन्हें स्त्री, पुरुष तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्धों की कल्पना दर्शनशास्त्र में प्रचलित कसौटियों के आधार पर की गई है। इस कारण यथार्थ रूप में सामाजिक दशा का निरूपण सम्भव

नहीं है। तथापि साहित्य समाज का दर्पण होता है, इस नाते उसमें सत्यांश होना सम्भव है। इस कथन के समर्थन में एक यही कथन पर्याप्त है कि संस्कृत भाषा में मन शब्द नपुंसकलिंग है और इस नाटक में मन को पुल्लिंग मानकर उसके दो पुत्र विवेक और महामोह क्रमशः नायक और प्रतिनायक हैं।

कुछ वर्णन नाटकीय लीकसे हटकर सामान्य वर्णन हैं जो कि अधिक यथार्थवादी हैं। समाज के अध्ययन की दृष्टि से ये अधिक उपयोगी हैं, जैसे उस समय दासों का क्रय-विक्रय होता था।[12] समाज का चित्रण एक ह्रासोन्मुख समाज के रूप में हुआ है। सारे समाज में दम्भ, छल, प्रपञ्च का जाल सा फैला दिखता है, जैसा कि धर्म और दर्शन के शीर्षक में देखा जा चुका है।

नारी का स्थान

सामान्यत: स्त्री को भोग्या के रूप में ही चित्रित किया गया है। उन्हें वासना पूर्ति का साधन ही देखा गया है। वे कमलाक्षी सुनयना थीं, उनके प्रत्येक अंगोपांग कामोत्तेजक है। उन्हें यम नियमादि की डाकिनी कहा गया है। स्त्री पुरुष के धैर्य को अस्थिर कर देती है। वैश्यायें पुरुषों को ठगती हैं। पिशाची स्त्री धोखा देती थी। स्त्रियों को धोखेबाज कहा गया है। स्त्रियों का हृदय ईर्ष्यालु होता है। रण्डी स्त्रियाँ बुरी होती थीं। 'स्त्री मुखं तु सदा शुचि' कहा जाता था। वैरागी चित्त को नारी साक्षात नरक दिखती थी। स्त्री कामदेव का प्रधान अस्त्र है। वैरागी मन को स्त्रियाँ मृगतृष्णा के तुल्य दिखती थीं। गृहस्थ सदा आश्रमवासी रहता है, अतएव जब मन की प्रवृत्ति स्त्री मरी तो निवृत्ति उसकी स्त्री बनी। स्त्रियों के अनेक अलंकारों का वर्णन है।

परिवार

परिवार में पति-पत्नी, माता-पिता, बहिन-भाई, दादा-दादी, पोता-पोती आदि के जो नाना सम्बन्ध होते है, उनका चित्रण प्रबोधचन्द्रोदय में प्राप्त है। मन की प्रवृत्ति और निवृत्ति दो पत्नियाँ थीं, इससे प्रतीत होता है कि बहुपत्नी प्रथा रही होगी। इस प्रकार विवेक अपनी पत्नी मति की सहमति से उपनिषद को भी सहचरी बनाता है और उसी से विद्या और प्रबोध का जन्म होता है, इससे भी नियोग प्रथा जैसी स्थिति का पता चलता है। क्रोध की स्त्री हिंसा, काम की स्त्री रति, लोभ की स्त्री तृष्णा, शान्ति की माता श्रद्धा आदि का वर्णन प्राप्त है। मैत्री, अनुकम्पा, मुदिता, उपेक्षा ये चारों बहिनें हैं।[22] वैराग्य वाले मन को पुत्रादि उसी प्रकार त्याज्य हैं, जैसे शरीर से उत्पन्न जूँ आदि कृमियों को यत्नपूर्वक निकाल कर हटा देते हैं। अपने ही

परिवार के सदस्यों की मृत्यु होने पर जलांजलि दी जाती थी। यही कारण है कि जब कामादिक मरे, तो विवेक ने उन्हें जलांजलि दी।

कुल स्त्रियों के धर्म का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यदि उनका पति विपत्ति में पड़ जाये, तो पति के उद्धार के उचित समय की उन्हें प्रतीक्षा करनी चाहिये, दर्शन और प्रियालापों के द्वारा पति को आदर देना चाहिये। जब पति के शत्रु नष्ट हो जायेंगे, तब स्त्री का मनोरथ पूर्ण होगा।[२३]

यदि पिता कुमार्गगामी हो, तो उसे छोड़ देना चाहिये। यही कारण है कि मन पिता के कुमार्गगामी होने पर पुत्र विवेक उसे छोड़ देता है।[२४] जैसी माता होती है, वैसा ही पुत्र होता है।[२५] जैसे विवेक और उपनिषद से प्रबोध और विद्या भाई-बहिन का जन्म हुआ।

राजनीतिक स्थिति

प्रबोधचन्द्रोदय में महामोह को राजा और अन्य काम, क्रोध, लोभ आदि को उसके प्रधान सरदारों के रूप में दिखाया गया है। इसी प्रकार विवेक को राजा और वस्तु विचार, क्षमा, संतोष आदि को उसके प्रधान सहायकों के रूप में। उनके युद्ध में मारण, मोहन, उच्चाटन आदि सभी प्रकार के दॉव-पेचों का उपयोग हुआ है। राजा लोग दम्भी साधुओं के चरणों की पूजा करते थे।[२६] राजा जब नगर में बाहर से आता था, तब नगर को खूब सजाया जाता था। विजिगीषु राजा के लिए शत्रु छोटा या बड़ा कैसा भी हो, कष्टकर होता है। अतएव उसका उन्मूलन करना आवश्यक है, जैसे पैर में छोटा सा ही कॉटा चुभा हो, तो भी कष्ट देता ही है।[२७] वस्तुविचार ने काम को वैसे ही जीत लिया जैसे अर्जुन ने सिंधुराज को जीता था। क्षमा ने क्रोध को वैसा ही जीता जैसे कात्यायिनी ने महिषासुर को मारा था।[२८] सेना में अभी भी पारम्परिक चार ही अंग थे, यथा—हस्ति, रथ, पदाति और घुड़सेना। रथी को सूत आयुष्मान कहकर उसके दीर्घ जीवन की कामना करता था।[२९]

राजनीति में दूत का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण था। विवेक ने नैयायिक दर्शन को अपना दूत बनाकर सन्धि का प्रस्ताव लेकर महामोह के पास भेजा और कहा कि वह अपने बन्धुओ सहित पवित्र स्थानों गिरि, नदी, उपवन को छोड़कर म्लेच्छों के यहाँ चला आये अन्यथा उसका समूल नाश कर दिया जायेगा।[३०] किन्तु मोह ने इस चुनौती को स्वीकार किया और विवेक को सजा देने के लिए पाखंडागम और पाखंड तर्कशास्त्रों के साथ मिलकर युद्धों की तैयारी की।[३१] उस समय की मान्यता थी कि—अग्नि, ऋण और शत्रु को शेष नहीं छोड़ना चाहिये।

वैसे ऐतिहासिक घटना की सूचना भी इस नाटक से प्राप्त होती है कि जैसे विवेक ने उद्दंड मोह को पराजित कर प्रबोध का उदय किया था, उसी प्रकार ही उद्दंड कर्ण राजा को पराजित करके (गोपाल ने) श्री कीर्तवर्मा राजा को पुनः स्थापित किया।[३२]

नीतिपरक लोकोक्तियां

मुर्गे को मार्जार खाले तो पालने वाले को उसके प्रति ममत्व के कारण शोक होता है, किन्तु चिड़िया या चूहे को खाले तो ममत्व न होने के कारण दुःख नहीं होता है।[३४] आत्महत्या जघन्य पाप है।[३५] जातिवंश वालों का पारस्परिक उत्पन्न क्रोध सम्पूर्ण कुल को ही नष्ट कर देता है।[३६] यद्यपि सभी वस्तुओं का विनाश अवश्यम्भावी है, तथापि बन्धुओं के विनाश से उत्पन्न शोक दुर्वार होता है और विवेक को भी नष्ट कर देता है।[३७] व्यासवाणी सरस्वती मन को समझाती है कि सभी संसार क्षणभंगुर एवं अनित्य है। अनित्यता के दर्शनवाला शोकावेग से ग्रस्त नहीं होता है।[३८] वैराग्य होने पर ही मन सोचता है कि यदि शरीर पर चमड़ी न हो, तो उसे गृध्र और कौओं द्वारा खा लेने से कौन रोक सकता है?[३९] धन, विषय रस, देह और लोक सब अनर्थ के मूल हैं।[४०] मन में वैराग्य आते ही सभी वस्तुओं का बिछोह दुःख का कारण नहीं है। संयोग का अन्त वियोग में है, यही सिद्धान्त है।[४१] अनित्यता की भावना पाकर ही सुखी हुआ जा सकता है। बार बार उपदेश सुनने पर भी हृदय शोकोर्मियों से मलिन हो जाता है।[४२] ताजे घावों की चिन्ता न करना ही महोषधि है।[४३] मन के प्रसन्न व स्वस्थ होने पर क्षेत्रज्ञ या आत्मा अपनी प्रकृति में स्थिर हो जाता है।[४४] योग रूपी नौका से संसार सागर पार किया जा सकता है। विषय भोग का सेवन अंगारों की नदी में गिरने के तुल्य है।[४५] भगवती गीता का वचन अनिर्वचनीय है। ज्ञानवृद्ध ही उपदेश देने के योग्य या अधिकारी है।[४६] माता संसार में बांधती है, देवी बंधन को काटती है।[४७] यहाँ देवी का अर्थ उपनिषद से हैं। सौ वर्ष तक संसार छेदक कार्य करते हुए जीवित रहना चाहिये।[४८] सुमार्ग पर चलने पर देवता भी सहायता करते हैं और कुमार्ग पर चलने पर भाई भी छोड़ देता है।[४९]

तीर्थ और मनोरंजन—

वाराणसी, चक्रतीर्थ, गंगा आदि का महत्व शापदमादि के लिए था। वाराणसी परमतीर्थ तब भी था और आज भी है, यही विश्वनाथ शंकर का

वास है। तीर्थ का फल उसे प्राप्त होता है जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप आदि संयत होते हैं।[50] यहाँ अतिरिक्त तीर्थ पद का अर्थ योनि उपस्थ भी किया गया है। एक पाठान्तर 'तपश्च कीर्तिश्च' भी है। उत्कल देश के जगन्नाथ मन्दिर का उल्लेख है।[51] शालिग्राम तीर्थ में विष्णु भक्ति रहती थी।[52]

इन्द्रजाल या जादू से मनोरंजन तो होता ही था, उससे धोखाधड़ी और ठगी भी की जाती थी।[53] वाक्कलह में भी मनोरंजन होता था।[54] ताम्बूल भक्षण प्रचलित था।[55]

अन्य विषय

स्कामिष अथात् भोग्य वस्तुओं के लिए ही भाई-भाई में विरोध हो जाता है, जैसे कौरव-पांडवों का पारिवारिक कलह।[56] विवेक और देवी मति को निर्धन चित्रित किया गया है।[57] गौड़ राष्ट्र में अहंकार का जन्म हुआ था।[58] तुरुष्क देश का भी उल्लेख है।[59] राढा जनपद में चक्रतीर्थ था, वहीं भागीरथी बहती थी। म्लेच्छ देश का उल्लेख है। उत्कल देश का उल्लेख है। कपिला गौ की श्रेष्ठता का उल्लेख है।[60] शविषाण न्याय न्यायशास्त्र में प्रचलित विचार है।[61] जिस प्रकार अन्धकार की रेखा से सूर्य का तिरस्कार होता है उसी प्रकार माया से ईश्वर का। विद्या अविद्या जनित सर्वविकारों का भक्षण कर लेती है।

संदर्भ

१. प्रबोध चन्द्रोदय प्रस्तावना श्लोक क्र० ४, अंक।
२. प्रबो० की संस्कृत भूमिका--श्री वासुदेव पणशीकर।
३. संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद--डा० देवेन्द्र कुमार, पृ० ६७ से १०१
४. तत्वार्थसूत्र—उमास्वामी, अध्याय ६
५. प्रबोध चन्द्रोदय अंक ३, श्लोक ६
६. वही अंक ३, श्लोक ८ ; ७. वही अंक ३, श्लोक ६
८. वही—कर्णोपिधाय (वृद्ध बुद्ध अहो दारुणा धर्मचर्या)
९. वही अंक ३ श्लोक १२, १३ ; १०. वही, पृ० १२०
११. वही अंक ३ श्लोक २० ; १२. वही अंक ३ गाथा २५
१३. वही अंक २, श्लोक १६, १७, १८ ; १४. वही अंक २, श्लोक।
१५. वही अंक २ श्लोक ३ ; १६. वही अंक २ पृ० ५४
१७. वही अंक २ श्लोक ११

१८. वही अंक ५ श्लोक ८ तथा पृ० १७४
१९. वही अंक ५ श्लोक ९ ; २०. वही अंक ५ श्लोक ३१
२१. वही अंक ३ पृ० १२३ , २२. वही अंक ४, श्लोक ५
२३. वही अंक ६ पृ० २११ ; २४. वही अंक १ श्लोक २२
२५. वही अंक १ पृ० ४५ ; २६. वही अंक २ श्लोक ८
२७. वही अंक २ श्लोक २७ ; २८. वही ४/१४ तथा ४/१७
२९. वही अंक ४/२५ ; ३०. वही ५/५
३१. वही पृ० ५/१७१ ; ३२. वही अंक ५ श्लोक ११
३३. वही अंक १ श्लोक ९ ; ३४. वही ५/२२
३५. वही अंक ५ पृ० १८५ ; ३६. वही ५/१
३७. वही ५/२ ; ३८. वही ५/ पृ० १८१—१८२
३९. वही ५/२३ ; ४०. वही ५/२४
४१. वही ५/२५ ; ४२. वही ५/२८
४३. वही ५/२९ ; ४४. वही ५/ पृ० १९६
४५. वही ६/७ ; ४६. वही अंक ६ पृ० २१३
४७. वही ६/११ ; ४८. वही ६/१५
४९. वही ४/ पृ० १४१ ; ५० वही २/ ४
५१. वही २/ पृ० ७८ ; ५२. वही ५/पृ० १६६
५३. वही ३/ पृ० ११५ ; ५४. वही ३ पृ० ११६
५५. वही ३/ पृ० १२५ ; ५६. वही १/१८
५७. वही अंक १ पृ० २३ ; ५८. वही अंक ४ पृ० ५२
५९. वही अंक २/७ ; ६०. वही ३/१
५१. वही अंक १ पृ० ३४

संस्कृत विभाग
महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर
म०प्र०।

मुंशी अजमेरी जी
की जन्म शताब्दी
पर
विशेष



स्व० मुंशी अजमेरी 'प्रेम'

वास्तविक नाम—प्रेम बिहारी अजमेरी—भीखा जी। जन्म—२४ नवम्बर, १८८१ ई०। साकेतवास—२६ मई, १९३७ ई० जन्मस्थान—चिरगांव, झांसी, उ० प्र०। प्रकाशित कृतियां—मधुकर शाह (खण्डकाव्य), गोकुलदास (खण्डकाव्य), चित्रांगदा (अनुवाद), हेमलासत्ता (खण्डकाव्य), मालूराम-चालूराम संवाद। अप्रकाशित कृतियां—रामकथा (बालरामयण), रामलीला (नाटक), कबीरदास (नाटक), श्रीपाल चरित्र (नाटक), सुखानन्द मनोरमा (नाटक), सुहराब रुस्तम (नाटक), जेहाजी (बाल उपन्यास) 'कहानी-संग्रह, प्रेम-पयोनिधि (स्फुट रचनाओं का संग्रह)।

एक पत्र डा० वृन्दावनलाल वर्मा के नाम

चिरगांव, (झांसी)
२-७-३६

प्रिय वर्मा जी, जय राम जी की।

पन्नू के हाथ भेजा हुआ आपका 'विराटा की पद्मिनी' नाम का उपन्यास मिला। जिस समय उसकी हस्तलिखित प्रति यहाँ आई थी, उन दिनों मैं यहाँ नहीं था, इससे इसके पढ़ने की मुझे बड़ी उत्सुकता थी। मैंने आपसे कहा भी था।

मेरी इच्छा की पूर्ति हो गई, मैंने उपन्यास पढ़ लिया। मैं आलोचना के रूप में कुछ न कहूँगा, क्योंकि मैं कोई कलाकार नहीं हूं, मुझे वैसा दावा नहीं है। तब मैं सिर्फ इतना कह सकता हूं कि मुझे कौन-कौन सी बातें अच्छी और कौन-सी बुरी लगीं। अच्छी तो अनेक बातें लगी हैं, इससे उनका जिक्र नहीं नहीं करूँगा, कहाँ तक करूं? यहाँ मैं उन्हीं बातों का जिक्र करूँगा, जो मुझे बुरी लगी हैं। आशा है, आप अप्रसन्न न होंगे। उपन्यास पढ़ कर कुछ न करता, तब भी अनुचित था और मै कहता कि मुझे बहुत अच्छा लगा तब भी, क्योंकि वह सर्वथा सत्य न होता। मैं झूठ नही कहता, इसे और आदमी चाहे न जानते हों पर आप जानते हैं। मेरे मकानवाले मुकदमें में राय साहब मुझसे एक बात कहलाना चाहते थे, पर मैंने नहीं कही, तब उन्होंने मुझसे कहा था—एक बात भी झूठी न कहोगे? मैंने कहा था—नहीं। आप पास खड़े थे।

लोचन सिंह जैसे सच्चे वीर के हाथ से छोटी महारानी का मारा जाना मुझे अच्छा नहीं लगा। जब राजा देवीसिंह ने दो हजार स्वर्ण मुद्राओं की घोषणा की थी छोटी महारानी के सिर के लिए, तब मैंने सोचा था कि शायद यह रामदयाल ही इस पुरस्कार के पाने का पात्र हो, क्योंकि आपने उसे बहुत ही नीच प्रकृति का चित्रित किया है। जब उस सूचना की घोषणा रामदयाल ने रानी को दी थी, तब उस रानी ने भी यही कहा था कि क्या तू मेरा सिर काटने आया है? सुनकर वह पीछे हट गया। पर वह कार्य उसके द्वारा न होकर लोचन सिंह के द्वारा हुआ, यह मुझे अच्छा नहीं लगा। इसकी

श्री:

चिरगाँव, (झाँसी)
२-१०-३५।

प्रिय वर्माजी, जय रामजी की।

पप्पू के हाथ भेजा हुआ आपका 'विराटा की पद्मिनी' नाटक का उपन्यास मिला। जिस समय तुमको इसका लिखित [illegible] यहाँ आई थी, उन दिनों मैं यहाँ नहीं था, इससे इसके पढ़ने की मुझे बड़ी उत्सुकता थी। मैंने आपसे कहा भी था।

मेरी इच्छा की पूर्ति होने [illegible] पढ़ लिया।

२— हजार अशर्फियों की उस घोषणा का करना न करना एक सा है। वह घोषणा व्यर्थ हुई, उससे कोई काम न निकला, फिर उसकी आवश्यकता ही क्या थी? वह करायी गयी, रामदयाल रानी का सिर ले जाता तो वह सार्थक हो जाती और रामदयाल की नीचता पराकाष्ठा को पहुँच जाती। पर रानी को मारने का कलंक तो बेचारे लोचनसिंह के भाग्य में लिखा था।

गोमती का चरित्र मुझे बहुत ही बुरा लगा। मुझे तो वह क्षत्राणी ही नहीं मालूम होती, किसी अहीर की छोकड़ी-सी जान पड़ती है। अच्छा हुआ जो राजा देवीसिंह से उसका विवाह न हो सका। उसका उत्तर चरित उसे बहुत ही गिरा देता है, मेरी राय में। अँधेरी रात में जब वह रामदयाल के संग विराटा से निकली थी, उस समय तक रामदयाल उसे महारानी और आप कहता रहा, पर रास्ते में जब वह उसे अकेली और असहाय अवस्था में पाता है, तब उसे एकदम 'तुम' कहने लगता है और अपनी कुप्रवृत्ति उस पर प्रकट कर देता है, इतना ही नहीं, उसे खींच कर छाती से लगा लेता है, पर वह कुछ भी नहीं कहती, किसी प्रकार का विरोध नहीं करती, उलटी उसकी छाती से लग जाती है और जब वह सब बातें खोल कर कह देता है कि मेरा राजा देवीसिंह से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, मैं तो तुम पर मरता हूँ, तुम्हारे लिए ही अपने को मैंने इस आपत्ति में डाला है, मैं तुम्हें अपनी स्त्री बनाऊँगा, तुम राजी हो? तब भी कुछ नहीं कहती। उसकी गोदी में पड़कर सो जाती है या उसको अपनी इच्छापूर्ति का अवसर देने के लिए

अपेक्षा तो वह गोमती ही रानी को उस समय मार डालती, जब रानी ने उसपर हमला किया। गोमती वार बचाकर भाग गई, उसके पास तमंचा था, पर उसने रानी को नहीं मारा, रानी को मारा लोचनसिंह ने, उसी लोचनसिंह ने जिसने सिंहगढ़ में उसे स्त्री समझकर छोड़ दिया था। आत्मरक्षा के लिए भी लोचनसिंह को ऐसा काम नहीं करना चाहिए था, क्योंकि वह प्रकृत वीर था।

कुंजरसिंह का वध भी राजा देवीसिंह के हाथ से न होकर यदि अलीमर्दन के हाथ से होता, तो मुझे उचित मालूम होता। देवीसिंह उसके—कुंजरसिंह के—भाई थे, उसके पिता के सिंहासन पर बैठे थे, सच्चे वीर और उदार पुरुष थे, उनके हाथ से बन्धु-वध होना मुझे अच्छा न लगा। जिन महाराज भवानीसिंह को लक्ष्य करके देवीसिंह की सृष्टि की गई है, उन महाराज का उस अर्जुनसिंह के साथ सदैव सदय बर्ताव रहा। अर्जुनसिंह को लक्ष्य करके ही आपने कुंजरसिंह की सृष्टि की है। जब अर्जुनसिंह नजरकैद थे कलकत्ते में, तब महाराज भवानीसिंह ने फिर उन्हें दतिया बुलाने की कोशिश की थी, परन्तु अर्जुनसिंह मर गये, इसके महाराज विवश हो गये थे।

दो हजार अशर्फ़ियों की उस घोषणा का करना न करना एक सा है। वह घोषणा व्यर्थ हुई, उससे कोई काम न निकला, फिर उसकी आवश्यकता ही क्या थी? वह कराई गई, रामदयाल रानी का सिर ले जाता, तो वह सार्थक हो जाती और रामदयाल की नीचता पराकाष्ठा को पहुँच जाती। पर रानी को मारने का कलंक तो बेचारे लोचनसिंह के भाग्य में लिखा था।

गोमती का चरित्र मुझे बहुत ही बुरा लगा। मुझे तो वह क्षत्राणी ही नहीं मालूम होती, किसी अहीर की छोकड़ी-सी जान पड़ती है। अच्छा हुआ जो राजा देवीसिंह से उसका विवाह न हो सका। उसका उत्तर चरित उसे बहुत ही गिरा देता है, मेरी राय में। अँधेरी रात में जब वह रामदयाल के संग विराटा से निकली थी, उस समय तक रामदयाल उसे महारानी और आप कहता रहा, पर रास्ते में जब वह उसे अकेली और असहाय अवस्था में पाता है, तब उसे एकदम 'तुम' कहने लगता है और अपनी कुप्रवृत्ति उस पर प्रकट कर देता है, इतना ही नहीं, उसे खींच कर छाती से लगा लेता है; पर वह कुछ भी नहीं कहती किसी प्रकार का विरोध नहीं करती उलटी उसकी छाती से लग जाती है और जब वह सब बातें खोलकर कह देता है कि मेरा राजा देवीसिंह से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, मैं तो तुम पर मरता हूँ, तुम्हारे लिए ही अपने को मैंने इस आपत्ति में डाला है, मैं तुम्हें अपनी स्त्री बनाऊँगा, तुम राजी हो? तब भी कुछ नहीं कहती। उसकी गोदी में पड़कर सो जाती

है। क्या उसको अपनी इच्छापूर्ति का अवसर देने के लिए? रामदयाल जैसा नीच मनुष्य ऐसे अवसर पर जो न कर बैठता, थोड़ा था, पर न जाने क्यों-उसकी हिम्मत नहीं पड़ी या क्या हुआ, नहीं तो उसका सतीत्व नष्ट होने में तो कुछ भी विलम्ब नहीं था। क्या इस बात को वह स्वयं न जानती थी? न जानती थी तो गधी थी और जानती थी तो महापतिता। अन्त में जब वह रानी के पास पहुँच जाती है और रानी उससे कहती है कि रामदयाल तुझे अपनी स्त्री बनाना चहाता है, तुझसे विवाह कर लेगा जो तू उसकी जाति की हुई तो। तब वह कहती है-और अगर जाति की न हुई तो? रानी कहती है—तब भी रखैल बना लेगा। वह कुछ नहीं कहती है, जब कहती है तब भी इतना ही कि मैं उनसे विवाह न करूँगी। रानी कहती है – तू चाहे उसकी दासी बन के रह चाहे उसका गला काट ले, मुझे कुछ मतलब नहीं। तब वह उसका गला काटने से इनकार करती है। उसने रानी से रामदयाल की जाति भी पूछी थी, रानी ने कहा था कि वह दासी पुत्र है, दासी पुत्रों की जाति नहीं होती। क्या इसी से उसने विवाह से इनकार किया था, यही थी वह देवीसिंह की वाग्दत्ता क्षत्रिय कन्या, जो रानी के वार करने पर पीठ दिखाकर भागी। तमंचा न चला सकी। वह तमंचा उसके पास कहाँ से आया था? न जाने आपने गोमती को इतने कुत्सित रूप में क्यों चित्रित किया। इसका चरित्र मुझे बहुत ही बुरा लगा। वह देवीसिंह से नाराज हो गई थी, ऐसा उन्होंने क्या कहा था? और अपने पति से अप्रसन्न होकर भी क्या प्रकृत क्षत्रिय कन्या ऐसी हो जायगी? अथ और क्या कहूँ।

—अजमेरी

(मुन्शी जी के पौत्रश्री विद्यासागर शर्मा के सौजन्य से)

दो समस्या पूर्तियाँ / मुंशी अजमेरी

• समस्या : 'जिन सूकर न खावा वृथा जन्म को गमावा है'

प्रबल पराक्रमी मृगाधिप बखानें इम—
'हमको सदैव मृग आमिष सुहावा है'।
मीन की प्रशंसा जलमानुष विसेस करें,
भाषें वृक-'हमको तो अजा मांस भावा है'।
मुंडे मुंडे भिन्न रुचि, भगवत की लीला है,
सबने रुचि के अनुसार गीत गावा है।
भू-भू कर कूकर पुकार कें सुनावें—'जिन
सूकर न खावा वृथा जन्म को गमावा है'।

• समस्या : 'लोग देहें तोहि गारी री'

हरित वितान-सो तन्यो है तुंग तेरे तीर,
छाया है गभीर, सर्वकाल सौख्यकारी री।
आँधरी भई है का? न दीसत नदीस-नारि,
बिरमत नित्त यहाँ केते नर-नारी री।
डाटिहै न बेग, कहूँ काटिकें करारो, याहि
अटकि उपारिहै, तो सुनलै हमारी री।
जल बह जैहै तेरो, सूनो रह जैहै अंक
पैहै तू कलंक, लोग देहें तोहि गारी री॥

(मुंशी जी के पौत्र श्री विद्यासागर शर्मा के सौजन्य से)

कवितावली का खरखौंकी शब्द / कृष्णानन्द गुप्त

[पत्रिका के दूसरे अंक में इस स्तम्भ के अन्तर्गत 'खरखौंकी' शब्द पर श्रीदुर्गाचरण शुक्ल की टिप्पणी प्रकाशित हुई थी, इस अंक में प्रस्तुत है वयोवृद्ध विद्वान श्री कृष्णानन्द गुप्त का पत्र। शुक्ल जी ने 'खर' शब्द का अर्थ तृण किया है और खौंकी का भक्षी, जबकि गुप्त जी ने 'खरखौंकी' का अर्थ तिड़ी-बिड़ी कर देना, नष्ट कर देना बताया है। खरखौंकना क्रिया कहां से आई, यह खोज का विषय है। पाइअसद्दमहण्णवो के पृष्ठ २४२ में 'खर' (प्राकृत) का अर्थ झरना, नष्ट होना दिया गया है और उसे संस्कृत की 'क्षर' धातु से व्युत्पन्न माना गया है। सम्भवतः बुन्देली की खरखौंकना क्रिया इसी से बनी हो। बुन्देली शब्दों को परखने के लिये प्राकृत के शब्दों पर ध्यान रखना आवश्यक है।—सम्पादक]

प्रिय भाई नर्मदाप्रसाद जी,

'मामुलिया' का दूसरा अंक मिल गया। उसके साथ आपकी चिट भी। दोनों के लिये धन्यवाद।

यह दूसरा अंक पहले से भी अधिक सुन्दर और सुपाठ्य बना है। कई लेख मुझे बहुत अच्छे लगे। उत्तरोत्तर उन्नति के बीज पत्रिका में मौजूद हैं। मैं एक बार पुनः आपको बुन्देलखण्ड के सम्बन्ध में इतनी बढ़िया पत्रिका प्रकाशित करने के लिए बधाई देना चाहता हूं।

अपने बंधुवर श्री दुर्गाचरण जी शुक्ल के लेख 'शब्द बोलते हैं' की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है और उस पर मेरी टिप्पणी भी चाही है। मैं स्वयं भी शायद उसके विषय में आपको लिखता। जैसा कि आप देख रहे होंगे, गोस्वामी तुलसीदास जी की कवितावली में एक स्थान पर खरखौंकी शब्द आया है—'लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक जथा खरखौंकी।' (उत्तरकांड १८३)। सभी टीकाकारों ने इसका अर्थ 'आग' लिखा है। कोषों

में भी यही अर्थ दिया गया है। मैं इससे सहमत नहीं हूं। टीकाकारों अथवा कोषकारों ने यह अर्थ अन्दाज से ही लिख दिया है। खरखौंकी का कोई अन्य उनकी समझ में नहीं आया। आग ही अर्थ उन्हें उपयुक्त और समीचीन जान पड़ा, इसलिए उसे ही रख दिया। किन्तु उक्त अर्थ को स्वीकार करने में मुझे निम्नलिखित आपत्तियां हैं—

(१) आग के अर्थ में खरखौंकी शब्द बुन्देली में प्रचलित नहीं मिलता। अपने जीवन में आग के अर्थ में उक्त शब्द को मैंने कभी नहीं सुना। गोस्वामी जी की 'कवितावली' बुन्देली भाषा और संस्कृति से विशेषरूप से प्रभावित है। उसमें कहीं कोई ऐसा शब्द नहीं आया, जो हमारे निकट अपरिचित हो। तत्सम या तद्भव शब्दों को जाने दीजिये। किन्तु जहां कहीं भी ठेठ ग्रामीण अथवा देशज शब्दों का प्रयोग गोस्वामी जी ने किया है, वे सबके सब या तो बुन्देली हैं अथवा हम उनसे भली भांति परिचित हैं। ऐसी दशा में गोस्वामी जी ने आग के लिए एक ऐसे शब्द का प्रयोग किया होगा, जिससे उक्त अर्थ में हमारा कोई परिचय ही नहीं है या केवल अनुप्रास मिलाने के लिए उन्होंने गढ़ लिया होगा, यह हमारी समझ में नहीं आता। यहां यह लिखना अवान्तर नहीं होगा कि गोस्वामी जी की रचनाओं में जहां कहीं भी बुन्देली शब्दों का प्रयोग हुआ है, वहां कई शब्दों का अर्थ टीकाकारों की समझ में नहीं आया और जो मन में आया लिख दिया। उदाहरण के लिये कवितावली को ही लीजिए। लंकाकांड में आया है—कोई औंज पानी पियें। विद्वान टीकाकारों ने इसका अर्थ किया है—कोई घबराकर पानी पी रहे हैं। किन्तु बताने की आवश्यकता नहीं कि 'औंजना' क्रिया का अर्थ पानी से भरे घड़े को तिरछा करके किसी दूसरे पात्र में पानी लेना होता है। यह खरखौंकी शब्द भी उनमें से एक है, जैसा हम आगे लिख रहे हैं।

(२) दूसरी आपत्ति, साहित्य में कोई शब्द विशेषकर ग्रामीण शब्द किसी विशेष अर्थ में सहसा प्रयुक्त नहीं हो सकता, जब तक वह पहले से उस अर्थ में प्रचलित न हो। कवितावली में ही एक स्थान पर 'धमधूसर' शब्द आया है। हम उससे भली भांति परिचित हैं। निस्संदेह वह गोस्वामी जी की टकसाल में नया गढ़ा जाकर तैयार नहीं हुआ।

(३) कवितावली में उक्त पंक्ति में 'लहकी' क्रिया का कोई कर्म नहीं है। लहकी का अर्थ लगाना—जैसा कि सभी टीकाकारों ने लगाया है—कि पहाड़ में खूब आग लगी है जैसी कि हनुमान जी ने लगाई, एक जबर्दस्ती की खींच-तान मात्र है।

(४) 'खरखौंकी' का 'आग' अर्थ स्वीकार करने से पंक्ति में आग शब्द की

पुनरुक्ति हो जाती है। पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानों हनुमानजी ने लंका में जो आग लगाई, वह पहाड़ में लगने वाली आग से कोई भिन्न आग थी; वही आग नहीं थी, जो पहाड़ में अथवा अन्य के स्थान में लगा करती है। यह पंक्ति का एक बड़ा दोष है। गोस्वामी जी की रचना में उसकी आशा हमें नहीं करनी चाहिए।

(५) संस्कृत में अग्नि के ६४ नामों में 'तृणभक्षी' शब्द नहीं मिलता। ऐसी दशा में हमारी यह धारणा भी अनुचित और अनुपयुक्त होगी कि संस्कृत के 'तृणभक्षी' शब्द के आधार पर गोस्वामी जी ने आग के लिए एक नया शब्द खरखोकी शब्द गढ़ लिया होगा और फिर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अग्नि केवल तृण क्या सब कुछ खा जाती है, सब कुछ स्वाहा कर देती है। ऐसी दशा में 'तृणभक्षी' अथवा इन्हीं कारणों से 'खरखोकी' शब्द उसके गुण धर्म और महिमा के कतई अनुरूप नहीं है। बल्कि बहुत छोटा है। सर्वभक्षी नाम ही सार्थक और सुन्दर है।

(६) केवल बुन्देली में ही नहीं, भोजपुरी, अवधी अथवा ब्रज भाषा में भी यह शब्द कहीं भी अग्नि के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता। कहीं भी मैंने नहीं पढ़ा और न सुना ही है। भोजपुरी में 'खरखोकी' शब्द कुलटा या दुराचारिणी स्त्री के लिए ही प्रयुक्त होता है—(खर = घास-पात अथवा निकृष्ट वस्तु + खोकी = खानेवाली, खाने वाली) अर्थात् ऐसी स्त्री जो एक स्थान पर न बैठकर इधर-उधर घूमती और खाती फिरे। यह ठीक वैसा ही है, जैसा बुन्देली में कहते हैं—सतरा बहेरे करिया करने वाली अथवा सात घाट का पानी पीने वाली। खोकी या खखकी खाऊ का स्त्री लिंग है। भोजपुरी में इस 'खरखोकी' का अर्थ आग कदापि नहीं होता।

वास्तव में 'खरखोकी' शब्द ठेठ बुन्देली और बुन्देलखंड का है। उसका अर्थ होता तितर-बितर कर देना, नष्ट कर देना; (खरखोकना क्रिया) खरखोकी शब्द को क्रिया के रूप में ग्रहण किये बिना पंक्ति का अर्थ लग ही नहीं सकता और अब लग जायेगा सन्तोषजनक रूप से-पहाड़ में आग लगी है, खूब दहक रही है, जंगलों को उसी तरह तहस-नहस कर रही है, जिस प्रकार हनुमान जी ने लंका को (आग लगा कर) नष्ट कर डाला था।

इस सम्बन्ध में अपनी मनस्तुष्टि के लिए मैंने केवल बन्धुवर शुक्ल जी को ही नहीं, बल्कि कुछ अन्य मित्रों को भी पत्र लिखे थे और उनके निकट जानना चाहा था कि क्या अग्नि के अर्थ में 'खरखोकी' शब्द से उनका कोई परिचय है अथवा क्या इस शब्द को किसी भी अर्थ में वे जानते हैं। सबने ही निस्संदेह पंक्ति को पढ़ने के पश्चात गहराई में गये बिना उसका अर्थ 'आग' ही बता

दिया, जिससे मैं सहमत नहीं हूँ। शुक्ल जी को अपनी आपत्तियाँ भी मैंने आज दो-एक पत्रों में लिख भेजी थीं। अपने लेख में उनका उल्लेख उन्हें करना चाहिये था। मेरे एक पत्र को देने से पाठकों में भ्रम फैल सकता है।

शुक्ल जी ने अपने लेख में खर-पतवार शब्द का उल्लेख किया है। यह कह दूँ एक शब्द नहीं है, बल्कि दो सार्थक शब्दों से मिलकर बना एक युग्म शब्द है। खर = सं० खड = घट = पौधों के सूखे डंठल, सूखी मोटे तिनके वाली पत्ते; पात + पतवार = वृक्षों के नीचे अथवा खेत में पड़े पत्ते, कूड़ा—करकट। यह संस्कृत का 'खड' शब्द हमारे देश की लगभग सभी भाषाओं में खड़, खाड़, खर आदि के रूप में मौजूद है। बुन्देली में खड, खाड़ू और खड़ारा शब्द से हम सभी भली भाँति परिचित हैं। खाड़ अरहर के सूखे डण्ठलों को कहते हैं। खाड़ के टट्टर बनते हैं और घर छाने के काम में भी आती है। मोनियर विलियम्स ने अपने प्रसिद्ध संस्कृत-अंग्रेजी कोष में खड शब्द का अर्थ सूखी घास, घास के सूखे डंठल, जिनसे घर छाया जाता है। हेमचन्द्र के 'देशी नाम माला' में भी यह मिलता है।

शुक्ल जी ने अपने लेख में बहुत अधिक कल्पना से काम लिया है, उसकी जरूरत नहीं थी।

शब्द बोलते अवश्य हैं, किन्तु कभी-कभी वाग्देवी हठपूर्वक मौन धारण कर लेती है और उनसे कुछ पाना या जानना एकदम कठिन या श्रमसाध्य हो जाता है।

स्वीकार कर लूँ कि मैं भाषाशास्त्री नहीं हूँ और न शब्दों का पंडित ही। किन्तु फिर भी शब्दों से मुझे बेहद प्रेम है। कोई शब्द कहाँ से आया, उसका पुरातत्व मूलक इतिहास क्या है, क्या उसकी वंश-परम्परा है उसकी अपेक्षा उसके सही अर्थ में परम्परा से ग्रामीण जनता में उसका क्या अर्थ प्रचलित है, किस रूप में वह उसे जानती है, उसमें ही मेरी अधिक दिलचस्पी है। मैं यहाँ ठेठ ग्रामीण शब्दों की ही बात कर रहा हूँ।

आशा है इतने से आपके पाठकों का समाधान हो जायेगा।

आपका,

कृष्णानन्द गुप्त

—गरौठा, झाँसी, उ० प्र०

मैं एक गांव का मास्टर / कुंवर प्रेमिल

शबनमी सुबह थी। नदी की ऊँची कगार पर खड़े होकर पूर्व की ओर मुँह किये मैं नदी में प्रतिबिम्बित शनैः शनैः ऊपर खिसकते भगवान भास्कर के दर्शन करते अघा नहीं रहा था। बड़ा ही सुन्दर मनभावन दृश्य था। सुनहरी रक्ताभ छटा एवं दुधमुँही सुबह सामने मुस्कुराती खड़ी थी।

ऊषा की लाली क्रमशः गाढ़ी होती जा रही थी। लहर-किन्नरियाँ 'छपाक' के स्वर में सुबह का गुणगान करने में लीन थीं। पक्षीगण सूर्यनारायण के स्वागतार्थ मीठी स्वर-लहरी में तानें छेड़े हुए थे। लगता था, हरी चुन्नटदार साड़ी पहने प्रकृति-सुन्दरी नाचने के लिये आतुर हो चली है।

संगमरमरी पत्थरों से थिरक किरणबाला कुहरे की हल्की बुनी चादर को धीरे से खींच लेना चाहती थी। दूर-दूर तक शांति का असीम साम्राज्य था। सुन्दरता का बेहतरीन लिबास ओढ़े ऊषा रानी अपने मेंहदी लगे पैरों चलकर नदी पर झुक आई थी अपना मुँह प्रक्षालन करने। बकुलों की जमा तेंपूर्व की तरफ से उड़ती हुई आतीं और नर्मदा के हरे-भरे कछारों में गुम हो जातीं। चौतरफा भूरी-नीली पहाड़ियों के उभरे वक्ष थल पर सिसकती धूप, हरी-भरी वादियाँ—कितना कुछ छुपा है इन हरी-भरी घाटियों में।

नदी के दोनों ओर अडिग चुप खड़े टीले ही टीले। बदरंग खड़े ठेठ किनारे। ऐसे न जाने कितने ही टीलों में बँट गया है, मेरा देश। हर टीले का एक अलग मजहब, एक अलग भाषा। एक अलग धरती, एक अलग आकाश। कितने ही राज, कितनी ही दास्तानों के मुखबिर हैं ये टीले। कितने ही ज्वालामुखी अपने गर्भ में छुपाये हुए। कौन सी सभ्यता प्रकट होने के लिये मचली पड़ रही होगी इनमें।

तनिक देर के लिये मैं अपने को विजयी राम समझने लगता हूँ, जिसने स्वर्ण सुन्दरी लंका को विजित करके मेरी जैसी दृष्टि से ऐसे ही किसी टीले पर से भरपूर निगाहों से निहारा होगा विलेन रावण को मारकर। लगता है

अभी-अभी मेरे पंख उग आयेंगे और मैं किनारे, टीलों को पार करता सात समुन्दर पार उड़ जाऊँगा।

कुहरा उठ गया है। रौरिया नाले की पतली-सी धार संगम तक भली लगती है, मानो कोई विशाल-काय विषधर त्वरित गति से लहरिया चाल चलकर आ रहा हो। नाले के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे ताड़ वृक्ष हैं, जिन्हें देखकर छोटी वय में, मैं इसलिये डरा करता था कि प्रेतराज रात के समय दोनों पेड़ पर अपनी टाँगें फैलाकर सुस्ताया करते हैं।

मलयागिरि से चलने वाली हवा मन-मस्तिष्क को पूर्णतया प्रभावित कर रही थी। सप्तरंगी-इन्द्रधनुष लहरों पर उग आये थे। जहाँ देखो वहीं गीत के स्वर गुनगुनाते क्षण, गुनगुनाती नदी। खुली हुई छत, खुला हुआ आकाश।

नदी के वक्षस्थल पर नावें ही नावें। नाविकों के होंठों पर गुनगुना अनमोल स्वर। पानी भरतीं पनिहारिनों की खनखनाती हँसी। लहरों पर लहरें। मछलियों के समूह। कितने कम होंगे, जिन्होंने भौंरों की गुनगुन, पक्षियों का कलरव, लहरों का संगीत जी भर कर देखा-सुना हो।

सोच रहा था, बरसात में मैया किनारों को तोड़ती हुई, ठेलमठेल अन्दर तक घुस आती है। तब गाँवों के नाम पर होते हैं गले तक डूबे हुए दरख्त भर। मकानों, मन्दिरों की छतों, टीलों पर जिंदगियाँ बचाते स्त्री-पुरुष। पानी और पानी। जान पर बन आती है। ताड़ के पेड़ नदी की अगाध जलराशि में विलीन हो जाते हैं। लहरों की टक्कर से आवाज करते किनारे टूटते हैं। सोये हुए बच्चे नींद में चौंक पड़ते हैं। गायें रस्से तुड़ा लेती हैं। चारों तरफ पानी का शोर ही शोर। हवा ही हवा। बड़ी-बूढ़ियाँ मनौती मनाती हैं। माई (नदी) को घाँघरा-फरिया (कपड़े) चढ़ाती हैं।

एक तरफ तो घर-बार बहने की गहन चिंता है, मुरझाये हुए चेहरे पर विवशता है। दूसरी तरफ बच्चे हैं कि दिन भर पानी में भागते-तैरते होते हैं। लट्ठों पर सवारी कर दिन-दिन भर छुआ-छू खेलते हैं। कमर भर पानी में रोहू, मांगुर, नरेन, बाम मछलियाँ मार कर कूदे-कूदे फिरते हैं। ढेरों शंख और सीपियाँ बटोर लेते हैं। कैसी उम्र है ये, जहाँ दुख और निराशा में भी मुस्कुराहटों, कहकहों के सोते फूट-फूट पड़ते हैं। कोई मर्यादा, कोई बन्धन नाम मात्र का भी नहीं है।

मर्यादा है तो इन अनेक टीलों की। मैया इन्हें कभी नहीं फलांगती। सन् सत्ताइस के भयानक उल्टे पूर में भी इनकी मर्यादा बरकरार रही। एक से एक होनहार विद्वान, विदूषक, नेता, अभिनेता, पंडे, मुस्टंडे सभी इन

टीलों में गुल्ली-डंडा खेल कर पले, बड़े हुए हैं। बाद में शहरी लेबिल लगाकर ये सब विदेशी बन कर बैठ गये हों, तो बात अलहदा है।

सूखी रोटी और मैया का पानी पीकर गरीब-गुरबों तक की काठी भर जाती है। काले भुस्स शरीर पर मछलियाँ उछल-उछल जाती हैं। दिपतिया मछेरिन जवान हुई, तो संवरती ही गई। जो भी देखता उसे, हक्का-बक्का रह जाता। रात भर अकेली नाव-नेबरिया खेलती रहती टीलों पर छिके मृगछौने, खरगोश, लोमड़ियाँ पकड़ कर नाव में घूमती रहती। रात-बिरात पाँव में पायल बाँधे छुन-छुन करती घाट चढ़ती, तो गाँव की औरतें कानाफूसी पर उतर आतीं। छोकरों की छाती पर साँप सरकने लगते। ठकुराइने दिपतिया के नाम पर गरियातीं। कहती—"जिज्जी, चुड़ैल भी नहीं खाती रोज को। जवानी में आँखें रहते अंधी हो गई है छिनाल। पता नहीं किसे डसेगी।"

मैं स्कूल मास्टर हूँ। जब से आया हूँ, तब से इस गाँव की महत्ता स्वीकारे पड़ा हूँ। रहने के लिये गाँव के पटेल का तबेला है और स्कूल कैथे के पेड़ के नीचे लगा लेता हूँ। दो टिक्कड़ खाकर अपनी मुस्कराहट बाँटते रहना मेरा काम है। मैं ठहरा इन गरीब बच्चों का गरीब मास्टर। मुझे सपने भी गरीबी के आते हैं। इन झुग्गी-झोपड़ी वालों से एक अजीब-सा सम्बन्ध हो गया है मेरा। ये सब मेरे अपने हैं। भूखे, अधनंगे, उलझे बालों वाले मेरे विद्यार्थी इस देश की धरोहर हैं।

एक जिन्दगी इन बखरी वाले बच्चों की भी है। शहरों में पढ़ते हैं। गाँव आते हैं, तो गुलेल से बस्ती भर की चिड़ियाँ, कबूतर, गिलहरियाँ मारते हैं। उद्दण्डता और शरारत का ओर-छोर भी नहीं है। मालगुजारी चली गई, लेकिन ऐंठ अभी भी बरकरार है।

रात भर मूसलाधार बरसात में लोग लालटेन लेकर नदी का जल-स्तर नापते रहते हैं। बढ़ते स्तर को देख-देख चेहरे स्याह होने लगते हैं। जब अंग्रेजी के 'यू' अक्षर के आकार की रौंगिया बड़े वेग से गाँव में घुसकर दो भागों में बाँटती हुई बाग-बगीचों को अस्त-व्यस्त करती हुई जमुनहाई के जामुन-पेड़ों को नोचती-खसोटती पथरहाई पर से नर्मदा नदी में कूद पड़ती है, तो बस्ती में हाहाकार मच जाता है।

इन्तिहा हो जाती है। लोग गठरियों को नावों में लाद कर ठाकुरों की बस्ती में घुस आते हैं। उतनी बड़ी-बड़ी दालानें, परकोटे, किसी प्राइवेट बस की नाईं ठस्सम-ठस्स भर जाते हैं। चिल्लपों, हड़बोंग से बस्ती वालों की नींद उचट जाती है। कौन कहाँ पड़ गया, उसकी फिकर किसे रहती है।

बखरी वालों की रातें रङ्गीन हो जाती हों, तो इसमें बुरा क्या है? बहरहाल शिकायत किसी से किसी को नहीं होती। पानी में रहकर मगर से बैर भला कौन चाहेगा?

मेरे तबेले में भी पीछे की तरफ से बाढ़ का पानी, कछुए, मगर के बच्चे, बिना बुलाये मेहमान की भाँति घुस आते हैं। मैं भी खानाबदोशों की तरह इन गाँव वालों के साथ बड़ी आत्मीयता से ठस्सम-ठस्स हो जाता हूँ। उस समय बेचारे गरीब मुझे अपने रिश्तेदारों, माँ-बाप, भाई-बहिनों से कम नहीं लगते। एक अदद मैं और एक अदद यह गाँव दोनों ही। ऊपर से हरे-भरे किन्तु अन्दर से गहरे तक खाली पड़े हैं।

आप कहेंगे—'मास्टर तबादला क्यों नहीं करा लेते ऐसे स्कूल से? अमाँ, यह भी कोई तरीका है जीने का। तबेले की जिन्दगी भला आदमी जीते हों, ऐसा कभी सुना है। एँ'

हाँ, आपका कहना सही है। परन्तु न जाने क्यों, मुझसे यह गाँव छोड़ा नहीं जाता। मैं सचमुच ही अपने तबेले से, कैथे के नीचे वाले स्कूल से, नंगे-अधनंगे विद्यार्थियों से घुलमिल गया हूँ। मुझसे छोड़े नहीं जाते ये रेत बेडौल टीले, नर्मदा के हरे-भरे कछार, भौंरों की गुनगुन, पक्षियों का कलरव, दुधमुँही सुबह, मैं किसी तरह भी नहीं छोड़ सकता हूँ इन्हें। किसी ऐवज में भी नहीं।

यदि आप भी एक दिन अपनी आँखों से यह सब देख लेंगे, तो सचमुच शहर छोड़कर यहीं बस जायेंगे। चाहे रहने के लिये गाँव प्रमुख का तबेला ही क्यों न हो। छाँह के लिये एक अदद कैथे का पेड़ ही क्यों न हो।

४९८, मोती भवन, बामनपुर
जबलपुर (म०प्र०)

पोस्टमैन के किवाड़ों की दरार से पत्र डालने की आवाज सुनकर चला आया था। पम्मू की चिट्ठी थी। अवाक रह गया था पढ़कर। शादी कर रहा है किसी पंजाबी लड़की के साथ। मुझसे पूछा तक नहीं। कितना दूर हो गया है सगा भाई। लेकिन इसमें उसका दोष क्या····? सभी बातें दिमाग में कौंधने लगी थी। इतने में बगल के बड़े साहब की लड़की दौड़ते-दौड़ते आकर चार लड्डू रख गयी थी हाथ पर-'लड्डू खाओ न अंकल, मेरा छोटा भइया आया है अस्पताल से।'

मैं भी दौड़ते-दौड़ते बगल की चच्ची के पास पहुँचा था––'चच्ची···· लड्डू। मेरा छोटा भइया आ गया है न, उसी के हैं।' शायद तब कक्षा ६वीं में पढ़ता था।

'तो, तू काहे को खुश होता है रे?' चच्ची ने बुजुर्गों की तरह हाथ मटका कर कहा था।

और मैं चौंक कर रह गया था 'क्यों····?'

'अरे, तेरी अब तो कोई वकत नहीं रहेगी; न तुझे पापा चाहेगें और न ही मम्मी। सब छोटे के पीछे भागेंगे। बिस्कुट और चाकलेट भी उसी को दिये जायेंगे।'

मुझे लगा था कि लड्डू का थाल गिरने ही वाला है और मैं उल्टे पैरों लौट आया था। घर में चारों तरफ नीला आंटी, पुन्नू मौसी, रेणु दीदी सभी माँ की चारपाई घेरे खड़ी थी। मैं आगे के कमरे में पाँच मिनट तक खड़ा-खड़ा देखता रह गया था। मेरी तरफ किसी का ध्यान ही नहीं था। पहले सब आती थी, तो पूँछती - 'अम्मू कहाँ है, अम्मू कहाँ है?' पर आज···। चच्ची की बात मस्तिष्क में घूमने लगी थी।

'इसकी सूरत तो पापा पर गयी है!

'बड़ा स्वस्थ है दीदी।' मेरे कानों में बाणों से लग रहे थे।

इतने में पुन्नू मौसी को शायद मेरी याद आयी थी––'अम्मू तेरा छोटा-

छोटा भइया आ गया है। देख कितना सुन्दर है, है न?' उन्होंने हँस के कहा था।

'तो इसमें खुश होने की क्या बात है मेरे लिए?'

चच्ची की भरी हुई बात मुँह तक आ गयी थी।

सब हक्के-बक्के रह गए थे यह सुनकर।

'तू तो मूरख है अम्मू, अच्छा जा खेल?

मैं चुपचाप भीतर के कमरे में आकर सोफा पर औंधा लेट गया था। किसी ने खाने के लिए भी नहीं कहा शाम को। कहाँ जबरजस्ती खिलाया जाता था। 'थोड़ा सा चावल और ले ले थोड़ी सी खीर····। सोचते-सोचते सोफे पर ही सो गया था।

दूसरे दिन पापा टूर से वापस आए थे। जैसे ही दीदी ने सारी बात बतायी, वे लगभग-दौड़कर मम्मी के पास पहुँच गये थे। छोटे को न जाने कब तक देखते रहे। फिर वही बातें 'नाक मेरी जैसी है, आँखें दीदी जैसी।' फिर वही किस्से। मेरी तरफ ध्यान ही नहीं था उनका। पहले आते, तो दरवाजे से ही आवाज लगाते अम्मू····अम्मू····और गोद में उठा लेते। मुझे चच्ची की बात अब सही लगने लगी थी। मैं पापा से बिना मिले चुपचाप खिसक आया था। तभी दीदी बुलातीं हुईं आयी थीं––'पापा बुला रहे हैं।' पापा मुझे देखते ही बोले थे–– 'अम्मू, ले अपने भैया को, बिल्कुल तुम्हारे जैसा है।'

'मुझे नहीं लेना' कहकर मैं भाग आया था। दो चार दिनों तक यही सिलसिला चलता रहा था। घर के हर कोने में छोटे भइया की किलकारियाँ थी।

चच्ची की वह बात मेरे बहुत अन्दर तक चली गयी थी। मेरी पूरी की पूरी मानसिकता ही बदलने लगी थी। मैं अपने अन्दर माँ, पापा, दीदी, छोटे भइया सभी के प्रति एक अलगाव-सा महसूस करने लगा था। भइया का नाम प्रद्युम्न रखा गया था। सभी उसे पम्मू कहते थे। मैं पम्मू से भी बहुत दूर रहता था। शायद ही कभी उसे गोद लिया हो। जब कभी इच्छा होती तो चुपचाप जाकर उसे कुछ देर तक खड़े-खड़े देखता रहता। मम्मी कई बार कहतीं 'ले पम्मू को खिला ला।' पर हर बार मेरे सामने कोई न कोई बहाना निकल ही आता था। पम्मू जब एक साल का हो गया था। वह सब कुछ खाने लगा था और कुछ-कुछ बोल भी लेता था। मैं अब यह स्पष्ट देखता था कि बिस्कुट और टॉफी पहले पम्मू को दिये जाते फिर मुझे। अब तो मैं साफ मना भी कर देता––'अब बड़ा हो गया हूँ मम्मी, क्या बिस्कुट और चाकलेट ही खाता रहूँगा।'

दिन ऐसे ही गुजरते रहे। अभी तक मेरे इस अलगाव का व्यवहार किसी ने महसूस नहीं किया था। दो-तीन वर्ष और बीते। अलगाव की दीवार और चौड़ी होती गयी। अब शायद घर के लोग मेरे इस बदलाव का अनुभव करने लगे थे। मैंने पापा और मम्मी को आपस में खुसफुस करते भी सुना था—

'अम्मू अब पहले से बिल्कुल बदलता जा रहा है। एकदम गम्भीर हो गया है। न मुझसे अधिक बात करता है और न रेणु से ही। समझ में नहीं आता क्या हो गया है उसे।' मम्मी ने गंभीरता से कहा था। पापा ने शायद उपन्यास से सिर ऊपर उठाया था--'हूँ, मुझसे भी कम मिलता है वह। कभी-कभी अवस्था बदलने पर व्यवहार भी बिल्कुल बदल जाता है और फिर उसे अपनी पढ़ाई का भी तो पूरा ध्यान रखना पड़ता है।' बात यहीं खत्म हो गयी थी।

मैं कक्षा में हमेशा अव्वल रहा करता था और पूरा घर यह खास तौर पर ध्यान रखता था कि किसी भी तरह मेरे पढ़ने-लिखने में कोई बाधा न हो। एक बार दीदी भी सीढ़ियाँ चढ़ती मेरे कमरे में आ धमकी थीं।

'एक बात पूंछू अम्मू ··?' और मेरे बिना कुछ कहे वे शुरू हो गयी थीं—'अम्मू तुम्हें आजकल क्या हो गया है? न तुम कभी मेरे पास ही बैठते हो और न कभी मम्मी के पास। मैंने यह भी कभी नहीं देखा कि तुम पम्मू के साथ खेले हो। आखिर क्यों ··? तुम इतने रिजर्व क्यों होते जा रहे हो ··? लगता है हम लोगों से दूर होते जा रहे हो, अम्मू।' मैं दीदी की तरफ देखता रह गया था—'दीदी ऐसा कुछ नहीं है। हाँ, मुझे अकेलापन जरूर अच्छा लगता है, एक अजीब-सा कुछ मिलता है उसमें। मेरी पढ़ाई भी जरूरी है, इण्टर की परीक्षा है और फिर पम्मू को भी मम्मी और आपका पूरा समय मिलना ही चाहिए।' मैंने बात खत्म करने के लिए अपनी आँखें किताब में गड़ा ली थीं।

वास्तव में मैंने अपनी दिनचर्या कुछ ऐसी कर ली थी कि अधिक से अधिक व्यस्त रहूँ। घर के लोगों के लिए मैं खाली नहीं मिलता था। कॉलिज से आने पर सीधे अपने कमरे की सीढ़ियाँ चढ़ जाता। नीचे सिर्फ खाना खाने ही आता था और कभी ऊपर ही मँगा लेता था। एक बार कॉलेज से आते ही मम्मी ने कुछ कहा था—'अम्मू आ, आज तुझे अपने हाथों से खिलाऊँ।' और एकदम निष्ठुर-सा हो गया था—'मम्मी मुझे अभी बहुत होमवर्क है, थाली ढककर कमरे में रख दो। मैं खा लूंगा।' मम्मी कुछ देर थाली लिए वैसे ही खड़ी रही थीं और फिर खाना रखकर चुपचाप चली गयी थीं।

मैंने बी. एस. सी. प्रथम श्रेणी में पास किया। घर में सभी लोग बहुत बहुत खुश थे। मम्मी ने कालोनी में लड्डू बांटे। 'अम्मू, तू भी अपने सभी, दोस्तों को बुला ले, आज सभी को मिठाई खिलाऊँगी।'

'न मम्मी, कुछ नहीं करना और फिर फर्स्ट आना कोई बड़ी बात नहीं है कि इतनी खुशियाँ मनायी जाएँ।' मम्मी का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया था। वे बिलकुल निस्तब्ध खड़ी रह गयी थीं। मुझे पहली बार लगा था कि शायद मैं यह सब ठीक नहीं कर रहा हूं। कभी-कभी लगने लगता कि पहले जैसा दौड़ते-उछलते जाऊँ और मम्मी के गले में बाहें डाल दूं, रेणु की चोटी तानकर तंग करूं, पम्मू को पीठ पर बैठाकर घुमाऊँ। पर तभी बच्ची की वह बात कुरेदने लगती और आँखों में फिर वही निष्ठुरता उतर आती। मैंने यह भी साफ महसूस किया था कि मेरे इस व्यवहार के कारण पम्मू भी मुझसे घृणा सी करने लगा है।

रेणु दीदी की शादी तय हो गयी। चार दिन बाद शादी थी। सभी मेहमान आने लगे थे। सभी के मुँह से यही चर्चा सुनी थी--'अम्मू तो बिल्कुल नहीं बोलता, छोटे से एकदम बदल गया है। पहले तो बातें कर-कर नाक में दम कर देता था।' मामी ने तो पास बुलाकर मुझसे कह ही डाला था--'अम्मू तुझे मालूम नहीं, मुझे आये दो दिन हो गए, पर तुम बोले ही नहीं। पूछा भी नहीं, कैसी हो मामी—बड़ा हो गया है न रे अब।' मैं सब कुछ सुनकर मुस्करा देता था। दीदी की शादी हो गयी।

मेरी पहले की मानसिकता, अकेलापन और दीदी की शादी में लड़के वालों के व्यवहार से मेरे मन में सम्बन्धों के प्रति घृणा पैदा हो गयी थी। शादी एक बेमतलब की चीज लगने लगी थी। कुछ दिनों बाद मेरी सर्विस स्टेट बैंक में लग गयी। पोस्टिंग भी यहीं पर हुई। सर्विस लगी और शादी का सिलसिला शुरू। एक दिन खाना खाते समय मेरे कमरे में मम्मी चुपचाप बैठ गयी थीं। कुछ देर बाद उन्होंने बात शुरू की थी—'अब तेरी शादी कर दूं अम्मू, मुझसे काम नहीं होता।' थोड़ी देर बिल्कुल चुप रहा था मैं। फिर बात टालने की गरज से कह दिया था—'इतनी भी क्या जल्दी है मम्मी।' पर मम्मी ने पीछा नहीं छोड़ा था। शादी के बात पुनः आने पर मैंने साफ कह दिया था—'मुझे शादी नहीं करना है मम्मी। मैंने खूब सोच-समझकर फैसला किया है।' मेरी बात से वे अवाक रह गयीं : और मैं अपने कमरे की सीढ़ियाँ चढ़ गया था। पापा दूर से लौटे थे और मम्मी ने सारी बात बतायी थी। 'मैं क्या करूं मैं कुछ नहीं कहूंगा उससे।' पापा ने कहा था।

कुछ दिन से मम्मी बीमार रहने लगीं। उन्हें मलेरिया हो गया था। एक दिन शाम को जब बैंक से लौटा तो पता चला कि मम्मी अस्पताल में एडमिट हो गयीं है। भागते-भागते हास्पिटल पहुँचा। पापा बेचैनी से घूम रहे थे। दीदी को भी बुलवा लिया गया था। मैं भी जाकर चुपचाप खड़ा हो गया था, दीदी की तरफ देखते हुए। 'माँ दो घण्टे से बेहोश है, अम्मू।' और दीदी रो दी थी। नर्स ने दरवाजा खोला था। 'अम्मू कौन है, आइये····।' सभी के चेहरे पर एक आशा सी जगी। माँ को होश आ गया था। मैं माँ के सामने खड़ा हो गया था। माँ ने टूटे-फूटे शब्दों में मुझे पास बुलाकर बैठा लिया था—'एक बात बताएगा अम्मू बताएगा ?' मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया था। 'तू इतना बदल क्यों गया अम्मू ? इसके पीछे कोई बात है न, बता।' और मैंने माँ को बब्बी की पूरी बात सुना दी थी। मम्मी ने मुझे गले से लगा था—'कहीं ऐसा भी होता है अम्मू, माँ कभी ऐसा नहीं करती। एक बात और····तू शादी कर लेना जरूर।' अचानक उनके हाथ ढीले होकर गिर पड़े थे। मेरे मुंह से एक चीख निकल गयी थी। सभी दौड़ पड़े थे। माँ हमें छोड़ कर चली गयी थी।

मुझे हमेशा ऐसा लगता रहता कि मम्मी की मौत का पूरा दोष मेरा ही है। रोज माँ की तस्वीर के सामने रो लेता था। कुछ दिन बाद रेणु अपने घर चली गयी। पापा को सरकार की तरफ से विदेश जाना पड़ा चार महीने के लिए। रह गए मैं और पम्मू। इन दिनों एक परिवर्तन अपने आप आ गया था, मैं पम्मू का अब अधिक ध्यान रखने लगा था। महरी खाना बना जाती थी। मैं शाम को बैंक से लौटकर खाने के लिए पम्मू का इन्तजार किया करता था। 'आ गया पम्मू, तुझे ही देख रहा था।

चल खाना खायें।

'न भइया, मुझे अभी नहीं खाना। भूख नहीं है।' वह कमरे की सीढ़ियाँ चढ़ गया था। मुझे पुरानी बात याद आ गयी। मम्मी थाली लिए खड़ी रहती और मैं कमरे में चला। पम्मू अभी भी मुझ से अलगाव रखता था।

पम्मू ने दिल्ली में पढ़ना चाहा था। मैंने कहा था—'पम्मू तू यहीं क्यों नहीं पढ़ता। मैं अकेला बोर हुआ करूँगा।'

'आपको तो अकेले में अच्छा लगता है न भइया। एक अजीब सा सुख मिलता है और फिर मेरे रहने या न रहने से क्या फर्क पड़ेगा।' लगता जैसे पम्मू बदला ले रहा हो।

वह दिल्ली में पढ़ने लगा। उसी की चिट्ठी है। लिखा है कि पापा को भी सूचित कर दिया है। क्या हम लोगों की आवश्यकता ही नहीं शादी में। यही लिख दिया होता—'तुम्हारा आना जरूरी है आशीर्वाद के लिए।' आखें भीगी-भीगी सी लगीं। पर उसका क्या दोष····? सभी भावनायें तो मैंने ही बोयीं हैं। जब ध्यान गया तो देखा वैसे ही खड़ा हूँ। एक हाथ में लड्डू और एक हाथ में चिट्ठी। लड्डू वैसे ही अलमारी में रख दिए। चिट्ठी भी मोड़कर माँ की तस्वीर के पीछे खोंस दी। लगा जैसे तस्वीर कुछ मुस्करायी हो अजीब हँसी, फिर गम्भीर हो गयी हो और आँखें बोल पड़ी हों—

'कहीं ऐसा भी होता है अम्मू। तू शादी कर लेना जरूर।'

रसायन विभाग,
छतरपुर, (म० प्र०)

एक दुनिया रोशनी से दूर / प्रीता व्यास

[मैं मैं सोच रही थी कि ऐसा क्यों हुआ । भगवान ने मेरे त्यौहारों को इतना सूना क्यों बना दिया ? दीपावली आती है, तो दियों की रोशनी देखने का मन नहीं होता, दिये जलाने की कौन कहे । होली आती है, रंगों को छूने तक की इच्छा नहीं होती । क्यों हुआ ऐसा ? आप ही बताइये, क्यों हुआ ऐसा ?····भीतरी मन के इन प्रश्नों को समझने के लिये कु. प्रीता व्यास की यह कहानी और वह भी दीपावली पर ज्योतिहीन नयन-दीपों के अहसास की जुबानी ।—सम्पादक]

गली में बच्चे ऊधम मचा रहे थे । सब खुश थे, दीपावली जो थी आज मैं छज्जे पर खड़ी खामोश निगाहों से उनको भागते-दौड़ते देख रही थी । मन किसका नहीं होता त्यौहारों को धूमधाम से मनाने का, पर न जाने कितने मेरी ही तरह मन मसोस कर रह जाते होंगे । आखिर, उसके लिए भी तो पैसा चाहिए । कितना-कितना सोच कर रखा था, पर कुछ भी नहीं हुआ । मन बोझिल सा हो गया मेरा । खुद को बहलाने के लिए मैं बच्चों की बातें सुनने लगी ।

वे एक दूसरे को बता रहे थे कि उनके मम्मी पापा ने उनके लिए कैसे कपड़े बनवाए हैं । कैसी मिठाई वे लाएँगे, कितनी आतिशबाजी लाएँगे···· । एक बच्चे की आवाज आई—"मैं तो खूब सारे राकेट लाऊँगा, मुझे बहुत अच्छे लगते हैं ।' दूसरे बच्चे ने कहा—'मेरे डैडी मना करते हैं राकेट चलाने को, वे कहते हैं कि घनी बस्ती में ऐसी चीजें नहीं चलाना चाहिए, जिनसे किसी का नुकसान होने की सम्भावना हो इसलिए मैं तो खूब सारी फुल-झड़ियाँ और चकरियाँ लाऊँगा । कितनी प्यारी लगती है ना चकरी, जब चलती है ?" एक दूसरे बच्चे ने सुझाव दिया—'बंटी बड़ी वाली चकरी लाना छोटी तो जल्दी खत्म हो जाती है, बड़ी वाली देर तक चलती है ।' 'अरे हां,

अनार भी तो कैसा अच्छा होता है । मैं तो वही लाऊँगा ढेर सारे ।'—एक और नन्हीं आवाज आई ।

मुझे लगा मैं और नहीं सुन पाऊँगी । उनकी भोली-भाली बातें भी चुभ रहीं थीं, मुझे शायद इसलिए कि मेरा रोहित वैसा कुछ नहीं कर सकता है और ना ही नये-नये कपड़े पहनने की अपनी खुशी प्रगट कर सकता है ।··· भगवान भी कितना सोच समझ कर काम करते है, बड़े आदमियों के बच्चों को इस तरह हँसते-खेलते, कीमती कपड़े पहने और ढेर सारे पैसों की आतिशबाजी चलाते देखकर कोई हीन भावना ना पनप सके उसके मन में, इसलिए रोशनी ही नहीं दी उसकी आँखों को । मन न जाने कैसा हो गया मेरा । मैं कमरे में लौट आई और दरवाजे अंदर से बंद कर लिए, ताकि उन बच्चों के स्वर मेरे मन को दुखाने मुझ तक न पहुंच पाएँ । रोकते-रोकते भी रुलाई फूट पड़ी । आज दीपावली है, हर मन खुश है, पर ये मन उदास है ।

"मम्मी"····रोहित की आवाज से मैं चौंक गई । मुड़कर देखा, दीवार के सहारे धीरे-धीरे आ रहा था वह, शायद मुझे ढूंढते-ढूंढते ही यहाँ तक आया था । मैंने पास जाकर उसे गोद में उठा लिया । उसने मुझे छूकर अंदाज लगाया, फिर बोला—'मम्मी मैं तुम्हें बहुत देर से ढूंढ़ रहा था । कहाँ थी तुम ? मैंने तुम्हें बहुत आवाज दी ।' कुछ रुक कर पूछा उसने-'मम्मी आज क्या है ?'

'आज····आज दीपावली है बेटे ।'

'वही जो पिछले साल आई थी, जब बहुत तेज-तेज आवाजें आ रही थीं, तो अपने मुझे बताया था कि लोग आतिशबाजी चला रहे हैं और ये उसी की आवाज है ।'

मैं उसकी बात के साथ ही पिछली दीपावली की याद में खो गई ।

वह दीपावली भी ऐसी ही दर्द भरी थी जैसी ये है आज की रात । रोहित सो गया था । मैं उसी के पास बैठी किसी पुरानी पत्रिका के पन्ने उलट रही थी । दूर चलते पटाखों की आवाज से जग गया था । वह । कुछ देर चुपचाप पड़ा सुनता रहा, फिर कुछ डर गया हो या जो भी हुआ हो, उसने मुझे आवाज देकर पूछा था—'मम्मी ·· मम्मी ये क्या है ?'

'क्या बेटा ?'

'ये आवाज ?'

'हाँ ।'

'दूर कहीं लोग आतिशबाजी चला रहे और ये उसी की आवाज है ।'

उसके चेहरे पर कई भाव आए लौट गये, फिर मेरी गोद में पर रखकर सो गया वह।

'मम्मी बताओ ना, ये वही दीपावली है ?'

'हाँ बेटा····ये वही दीपावली है।' मैं फिर वर्तमान में लौट आई थी।

'आज भी लोग आतिशबाजी चलाएँगे ?'

'हाँ।'

'ये दीवाली क्यों मनाते हैं मम्मी ?

'आज के दिन भगवान राम चौदह साल बाद अपने घर वापस लौटे थे रावण को मारकर, सब खुश हुए थे। उस दिन की खुशी की याद रखने के लिए आज भी सब दीपावली मानते है। बताया था न आपको पहले भी ?'

'हाँ'-- संक्षिप्त सा उत्तर दिया उसने।

'ये वही भगवान राम हैं क्या मम्मी, जिनकी तुम और पापा पूजा करते हो ?''

'हाँ, वही।'

'मम्मी ये भगवान कैसा होता है ?'

मुझसे उत्तर देते नहीं बना। जिसके लिए आकृति, आकार, रंग, रूप कोई अर्थ न रखते हों उसे क्या उत्तर दिया जा सकता है ? मैं अगर ये कहती थी कि भगवान राम तुम्हारे जैसे थे, तो भी शायद यही पूछता वह कि मैं कैसा हूँ ? वह अभागा तो खुद को भी नहीं देख सकता। मुझे चुप देखकर उसने अपना प्रश्न फिर दोहरा दिया।

''पापा से पूछ लो।' मैंने कहा।

'क्यों ? तुमको नहीं मालूम क्या ? तुमने भी नहीं देखा क्या भगवान को?

मुझे हँसी आ गई उसकी बात पर। 'नहीं देखा, तुम पापा से पूछ लो।'

'उन्होंने देखा है क्या ?'

'शायद देखा हो।'

मेरी गोद से उतर कर वह अतुल को ढूंढने चला गया और मैं फिर अपने विचारों के चक्रवात में उलझ गई।

न जाने कितनी पुरानी यादें रह-रह कर मन को दुखा रही थीं। बस यही लगता था बार-बार की कि अगर मेरी बात पर पहले किसी ने ध्यान दिया होता, तो शायद रोहित की जिन्दगी रोशनी से ताल्लुक न तोड़ पाती मैं शुरू से ही कहती थी कि मुझे कुछ अलग लगता है वह। और बच्चों जैसा क्यों नहीं करता वह ? मन को बार-बार यही शंका डराती थी जो बाद में सच ही निकली। मैं हमेशा मार्क करती थी कि इस बात को कि वह खुद

चलने की कोशिश नहीं करता। जहाँ बिठा दो, वहीं चुपचाप बैठा रहेगा। खिलौने लाकर रख दो उसके आगे, पर वह उन्हें छूता भी नहीं। आखिर क्यों ? चार-पाँच महीने का बच्चा ऐसा तो होता नहीं। दूर से उसे आवाज दो, तो सिर्फ आवाज की दिशा में गर्दन मोड़कर क्यों रह जाता है ? उसके चेहरे पर कोई भाव क्यों नहीं आता ? उसकी आँखों की पुतलियाँ हमेशा दूर, बहुत दूर क्या देखती हैं ? उनमें गति क्यों नहीं होती ? पर किसी ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। सब ये कह कर टाल देते थे कि अभी छोटा है, है, इसलिए ऐसा करता है। पर मुझे तो हर बार उसका व्यवहार परेशान करता था। हर बार यही प्रश्न उठता था कि रोहित और बच्चों की तरह क्यों नहीं करता ?

एक बार डाक्टर के पास लेकर गई थी मैं उसे। लगभग एक साल का था वह तब। डाक्टर को मैंने अपनी शंका बताई जो उसका व्यवहार देखकर मेरे मन में उठती थी। 'चैकअप' करने के बाद कहा था डाक्टर ने 'मुझे दुख है मैडम····आपका शक सही है।' मुझ पर बिजली गिरी जैसे। 'क्या अब कुछ भी नहीं हो सकता डाक्टर ?' अपने को संयत करके पूछा मैंने। 'सॉरी।' 'वैसे भी मनुष्य अभी तक कोई ऐसी मैडीसन या कोई तरीका ईजाद नहीं कर पाया है जो 'ब्लाइंड बोर्न्स' को विज़न दे सके। मुझे आप से पूरी सहानुभूति है, पर अब कुछ भी नहीं हो सकता। यों समझिए कि ये भी एक ऐसा प्वाइंट है, जहाँ आकर मानव को 'उस शक्ति' के आगे झुकना पड़ता है।'

मैं लौट आई थी चुपचाप और तब से सब कुछ चुपचाप ही सह रही हूँ– यही तो एक ऐसा प्वाइंट है जहाँ आकर मानव को 'उस शक्ति' के आगे झुकना पड़ता है, शायद इसीलिए।

'क्या सोच रही हो निशी ?' रोहित के पापा की आवाज से मैं चौंक गई।

'कुछ····नहीं।'—अपने दर्द को पीने की भरसक कोशिश करते हुए कहा मैंने।

'कुछ तो ? बताओ ना ?

'मैं··· मैं सोच रही थी कि ऐसा क्यों हुआ भगवान ने मेरे त्यौहारों को इतना सूना बना दिया ? दीपावली आती है, तो दियों की रोशनी देखने का मन नहीं होता, दिये जलाने की कौन कहे। होली आती है, तो रंगों का छूने तक की इच्छा नहीं होती। क्यों हुआ ऐसा ? आप ही बताइये क्यों हुआ ऐसा ?'—मैं उनके घुटनों में सर रखकर सिसक पड़ी। 'निशी····भगवान को क्यों दोष देती हो। ये हमारा भाग्य है, इसे स्वीकारो, सहो। रोने या दुखी

होने से तो रोहित को कोई फायदा होगा नहीं। उसकी दुनिया में तो रोशनी । तुमने सुना है ना, 'हारिए ना हिम्मत, बिसारिए ना हरि नाम', हिम्मत मत हारो, अपने पर विश्वास रखो। हमें अपना फर्ज पूरा करना है ना ? और फिर दुख किसे नहीं होता ? क्या मुझे नहीं होता है···बहुत ज्यादा होता है पर मैं कभी हिम्मत नहीं हारता और कभी हारने लगूं जाऊँ तो तुम संभाल लेना। आखिर हमें अपना फर्ज पूरा करना है। हम रोहित के लिए जितना जो कुछ कर सकते हैं, करेंगे।'—आँखें उनकी नम हो गई थीं।

'ये तो सब ठीक है, अतुल, पर जब दुख सहनशक्ति से बाहर हो, क्या तब भी हिम्मत बाकी रह सकती है ?'

'ये बेकार बात है निशी, कोई दुख सहने की सीमा से बाहर नहीं होता। ज्यादा हो सकता है पर असहनीय नहीं।'

मैंने उत्तर नहीं दिया। वैसे भी यही सोच-सोच कर मन को बहलाते रहना ही तो नियति है अब।

कमरे में हलकी सी गर्मी थी। अतुल ने उठकर दरवाजे खोल दिए। मैं एकदम बिखर गई फिर—'अतुल दरवाजे बंद कर दो।'

'क्यों ?'

'तुम भगवान के लिए दरवाजे बन्द कर दो अतुल; प्लीज बन्द कर दो दरवाजे।'

'पर आखिर क्यों ?

'बाहर गली में····बच्चे खेल रहे हैं ना ?'

हाँ।'

'वे जोर-जोर से बातें करते हैं, मुझे वे बातें नहीं सुननी।'

अतुल मेरे पास आकर बैठ गए। दरवाजे अब भी खुले थे।

'तुम्हें, उन्हें हँसता देखकर जलन होती है क्या ?'

'हाँ, शायद ऐसा ही है।'

'दूसरे के भाग्य से क्यों जलती हो निशी, ऐसा भी तो हो सकता है कि लोग तुम्हारा भाग्य देखकर····।'

'इसे भाग्य कहते हो तुम ?'

'निशी सिर्फ पैसे को भाग्य नहीं कहते और फिर दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जिनके पास इतना भी नहीं जो हमारे पास है। रही रोहित की बात तो निशी, लोग और भी बड़े-बड़े जख्म सँजोये रहते हैं। जिन्दगी बहुतों के लिए क्रूर हो जाती है, शायद उससे भी ज्यादा जितनी हमारे लिए है। ये क्यों

भूलती हो कि नदी का किनारा सामने के दूसरे किनारे को देखकर हमेशा यही कहता है कि संसार का सारा सुख उस किनारे पर है और दूसरा किनारा जिस पर संसार के हर सुख के विद्यमान होने की कल्पना की जाती है, वह अभागा भी आह भरकर यही कहता है कि संसार का सारा सुख उस किनारे पर है।'

'अपने भाग्य पर संतोष करो, जो है, जितना है, जैसा है, सब ठीक है।···· उठो पूजा का समय हो रहा है, चलो चलकर तैयारी करें।'

मैं आँसू पोंछकर उठ गई और अंदर जाकर पूजा की तैयारी में लग गई। मन से कहो या बेमन से, दिए तो जलाने ही थे।

वध सूर्यास्त पूर्व / 'सनागो'

जब सूरज ने बरसना
और मेघ ने तपना बन्द कर दिया
तो मैंने भी,

रोना बंद कर दिया।

अब तक एक मोती भी नहीं उगा
मेरे इन आंसुओं से
न सही मोती
एक फूल ही खिलता
तो काफी था :

यह ठीक है
कि मेरा हर संधान
भ्रष्ट हुआ।
और यह भी
कि बुढ़ापे की तरह
मैं-
अपनी कमर पर झुक गया
पर, न चाप टूटा है
न तूणीर रिक्त है
आज भी मैं
खण्ड की भाषा में
अखण्ड का जीव-शास्त्र
पढ़ रहा हूँ—
क्योंकि, शास्त्र
शस्त्र का ही सही है।
और मैं
खण्डित होकर भी
खण्ड-खण्ड नहीं हूँ :

भाग्य को
अपनी हस्त-रेखाओं में देखने का
मेरा शौक
अब
पूरा हो चुका है।

सत्य नारायण गोबरेले
सहायक संभागीय शिक्षा अधीक्षक, सागर, म० प्र०

भूल गया मैं / सुरेश पराग

अचानक....
मुझे लगा,
मेरी मुट्ठी
बहुत बड़ीहो गई—
इतनी, इतनी, इतनी
कि सारी धरती
बौनी होकर उसमें समा गई
और छटपटाने लगी,
तब मेरी सत्ता की लालसा
और बलवती होकर
अन्तरिक्ष का द्वार खटखटाने लगी।
बढ़ गया दूसरा हाथ
आसमान की ओर
एकक्षत्र साम्राज्य स्थापित करने की लालसा में।
भूल गया मैं
कि धरती कभी बौनी नहीं हुई
और हो भी नहीं सकती
न मुट्ठी इतनी बड़ी
कि किसी की स्वाधीनता छीन ले।

—देवेन्द्र नगर, पन्ना, म० प्र०

पं० रघुनाथ कृत विन्ध्य इतिहास / डा० नरेन्द्र विद्यार्थी

संवत उन्निस सो अधिक, चौदा की है साल।
घुसे फिरंगी विध्य में, मची रार बेहाल।

संवत् १६१४ में विन्ध्या बसुन्धरा के भूभाग में प्रवेश पाकर उत्पात मचाने वाले अंग्रेजों की उपद्रवी सेना के दुष्कृत्यों का वर्णन प्रत्यक्षद्रष्टा, स्वयं भुक्त भोगी कवि पण्डित रघुनाथ जी ने अपने द्वारा रचित विध्य इतिहास' नामक पुस्तक में दिया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है—

'रमानाथ पितु बन्द के, लिखें'' विध्य इतिहास।
जामें बुन्देलन करी, नीर छीर यश रास।'

उक्त मंगलाचरण में अ ाने पूज्य पिता श्री रामनाथ जी तैलंग को प्रणाम करते हुए ग्रन्थ के वर्ण्य विषय का भी उल्लेख कवि ने किया है— 'जामें बुन्देल नकरी नीर छीर यश रास' अर्थात इसमें अंग्रेजों की आततायी सेना से युद्ध करके उनको मार भगाने वाले यशस्वी विजयी बुन्देलों की और सागर की जलराशि जैसी शुभ्रधवल कीर्ति का वर्णन किया गया है। कमंठ बुन्देला वीर महाराज छत्रसाल की कर्मभूमि-पन्ना राज्य के ग्राम दिगवा (दग्धर या दग्धा) में राज्य और राष्ट्रकवि (महाराजा छत्रसाल के दरबारी कवि) 'लाल' के नाती पंडित रघुनाथ जी का जन्म सन् १८२२ में श्री रमानाथ जी के घर हुआ था। वहीं शिक्षा दीक्षा भी हुई, परन्तु ग्रहकलह के कारण-आप रीवाराज्य में जाकर रहने लगे। पितामह कविवर 'लाल' की परम्परा में काव्य-प्रतिभा पैतृक सम्पत्ति की तरह प्राप्त थी, 'विद्वान सर्वत्र पूज्यते'' की उक्ति के अनुसार उन्हें वहाँ भी राजकीय सम्मान प्राप्त हुआ। 'बन्धुबैर (गुह कलह) के कारण कवि को अपनी जन्मभूमि त्याग कर रीवा में बसना पड़ा, जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है—

''जन्मभूमि दग्धर सुभग, कर्मभूमि विख्यात।
पुन्यभूमि है स्वर्ग सम, देश देश प्रख्यात ॥

बन्धुबैर के कारनैं, जन्म भूमि को त्याग।
वास कियो रीवा सुभग, पाय राज अनुराग ॥

अपने ग्रन्थ में अंग्रेजों से हुए वीर बुन्देलों के युद्ध का वर्णन करते हुए सर्वव्यापी खून की होली जैसा भयंकर शब्दचित्र कवि ने प्रस्तुत किया है—

'छाये बहु संगी चहुं ओर सो फिरंगी वीर, विन्ध्यबहुरंगी में मची है रार आर पार।
झांसी, नागोद, रीवां, अजयगढ़ में घेरा परे डेरा परे बागिन के नगर मझार चार।
'कवि रघुनाथ' बानपुर सें कानपुर लों, लरे हैं हजार बार पुर नर नार द्वार।
पटना सतना में हुंडी फिरंगन रची, होली मची खून की, न है री कोऊ रखवार।

विक्रम संवत १६१४ में अंग्रेजी सेना ने विन्ध्य प्रदेश में प्रवेश किया। यह समस्त विन्ध्यव्यापी तो था ही, साथ ही उ० प्र० के झांसी और बानपुर से कानपुर तक, सतना से बिहार प्रान्त के पटना तक यह घमासान युद्ध था। खासतोर पर झांसी, नागोद, रीवां और अजयगढ़ को अंग्रेजों ने घेर लिया था, इन लुटेरों ने नगरों के बीचों बीच चार-चार जगहों पर अपने डेरे जमा लिये थे। बानपुर से कानपुर तक के तमाम बाजार, नगर और प्रत्येक घर के द्वार पर जाकर जहाँ जो मिला, उसी से वहीं लड़ाई ठानी और लूटा था। इसके अतिरिक्त सतना से पटना तक हुंडी (मार्शल) जारी किया, जिससे उनके विरुद्ध कोई सबल प्रतिकार भी न कर सके। दुष्परिणाम स्वरूप'' होरी मची खून की, न है री कोऊ रखवार''। इस खून की होली जैसी करुणाजनक स्थिति में असहाय एवं अशरण जनता ने अपने दुःखद दुर्दिन व्यतीत किये।

'घर का भेदी लंका ढावे' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले पन्ना, चरखारी, ओरछा ओर ग्वालियर राज्य की देशद्रोही सेनाओं ने अंग्रेजी फौजों को मदद पहुंचाई, इससे वीरांगन महारानी लक्ष्मीबाई की यशस्थली झांसी की हांसी हुई और पराक्रमी राजा मर्दन सिंह की राजधानी बानपुर पर आपत्ति के पहाड़ टूट पड़े। नागोद राज्य में मौत का भीषण दृश्य उपस्थित हुआ। इन सब करुणाजनक स्थितियों से अंग्रेजी सेनाओं के हौंसले और भी बढ़ गये। परिणाम स्वरूप रीवा, बघोरा, घोरा और देवरा के पहाड़ों के समीप वीर बुन्देलों की सेना ने अपने नेता वीर रनमत सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजी सेनाओं का मुकाबला बड़ी बहादुरी के साथ किया—

पन्ना चरखारी और ओरछा गवालियर के,
मिले है सिपाई जाई फिरंगिन के संग में।
'कवि रघुनाथ, हाय झांसी की हांसी भई, फांसी भई वीर बानपुर के प्रसंग में ॥
बीच नागोद नीच मीच उतररानी भली, चलों है बलीखान शान बहुरंग में ॥
रीवां, बघोरा, घोरा, देवरा के पहारन में, रारन मची है वीर, रनमत के संग में।'

रनमत सिंह के साथी दौआ लछमन सिंह और पमार
इस बुन्देली सेना में ब्रत के परिपालन में अपनी जान की
केशरी सिंह जैसे बहादुर लोक-रक्षा के उनकी विकट मार से अंग्रेजी सेनाओं को भागते
परवाह न करके ऐसे जुटे कि रीवां राज्य में जाकर
राह और राहत नहीं मिली। अजयगढ़ राज्य से भागकर वहाँ जाकर पैरों पर गिरे,
जिस किसी तरह प्राण बचाने के लिए शरण ली। शैतानी नहीं करेगें। परन्तु
गिड़गिड़ाये और वचन दिया कि अब आगे कोई रनमतसिंह ने वहाँ भी उनसे युद्ध करके
उनका कथन विश्वास योग्य न जानकर बाहर खदेड़ कर निकाल
उनको तबाह कर दिया और रीवा राज्य की सीमा से
दिया। वह यशस्वी गीत इस प्रकार है—

लक्षण सिंह दौआ केशरी पमार जू की,
मार सों भगे जे ते लुके आय रीबां में।
'कवि रघुनाथ, हाथ परे वे रनमत जू के,
रकत बहें, छिपे है, ते बघेलन की सीमा में॥
सब विधि बिल्लाने, और जराने पाय परि परि,
करिहै उत्पात नहीं, मान मय सीमा में।
रीवा की सीमा से भगाइ के फिरंगन को,
भिरो रनमत जाइधाइ कें दरोवा में॥

शैतान अंग्रेज अपनी आदत से लाचार थे, अतः वे केन नदी के किनारे अपने डेरा डालकर, तटवर्ती ग्रामों में रात्रि में लुकछिपकर, जाकर आक्रमण कर उत्पात मचाने लगे। प्रतिक्रिया स्वरूप अजयगढ़ राज्य की ओर से पमार सरदार केशरी सिंह ने अंग्रेजी सेना पर जवाबी आक्रमण कर दिया। उनके एजेन्ट सेनापति को घेर कर उसे लूट लिया। साथ ही उसकी सेना को अपनी राज्य की सीमा से बाहर खदेड़ किया। उसी समय का वर्णन है--

'केन पें सैन परी रघुनाथ जू, सैन रैन फिरंगिन ने उत्पाती।
आय पमार कुमार तहाँ सब, शांति जुझाई दई सज हाती।
केशरी सिंह एजेन्ट को घेर, छीन लई अथरान सुप्तती।
छाती संघाती करी अरजंट की, छांट बजाई मगाई बराती।'

इन्हीं दुर्दिनों में कवि रघुनाथ जी कहीं आते जाते अंग्रेजों की नजर में गड़ गये। अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े जाने वाले स्वतंत्रता संग्रामी सैनिक के रूप में उन्हें पहिचान कर उनसे भेद पूछ लगे। उन्हें गिरफ्तार करके प्रताड़ना भी दी परन्तु उन्होंने कोई रहस्य उनको देने की अपेक्षा मृत्यु का साक्षात्कार करनाा स्वीकार किया। उन्होने कहा कि हम राष्ट्र कवि 'लाल' के नाती हैं, अतः मर जायेंगे, लेकिन कोई भेद नहीं बतायेंगे—

कवि रघुनाथ कैद में आइ बों, बात कहीं सब भांत सुहाती।
भेद न दैहे कछू निज देश के, चाले सुछेद करो सिर हाती॥

प्रान जे हाजिर है सनमान खों, आन सों नहीं हटैंगे अराती।
रंगी फिरंगी सुनो हम विंध्य के, वीर प्रशंसा है 'लाल' के नाती।

इनको झुकता न देखकर अंग्रेजों ने इन्हें चाप में जल दिया और तरह-तरह से परेशान करने लगे। सौभाग्य से रात्रि का समय होते ही रनमत सिंह आ गये और उन्होंने आक्रमण कर कवि को कैद से छुड़ा लिया, साथ ही अंग्रेजी सेना के एजेन्ट का सर काटकर उसकी सेना को लूट लिया।

कवि की अडिग देशभक्ति के उपलक्ष्य में उनका विशेष सम्मान करवाया सम्माननीय कविवर रघुनाथ जी मुग्दल गोत्रीय तैलंग ब्राह्मण थे। १०दिसम्बर १८९२ को ७० वर्ष की आयु में कवि ने पार्थिव शरीर त्याग दिया। उनकी पुण्यस्मृति में हमारी श्रद्धांजलि अर्पित है।

—८१, छत्रसाल मार्ग
छतरपुर (म० प्र०)

बुन्देली कहावतों में व्यंग्य / डा० कृष्णकुमार हूंका

कहावतें जनता के परंपरागत विचारों का कोष हैं, अतः कहावतों में अनन्त युग का अनुभव एवं ज्ञान गुम्फित रहता है। नीतितत्व, धर्मोपदेश तथा व्यवहारशास्त्र की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें लोक-प्रचलित कहावतों में बीज रूप में सुरक्षित रहती है। यही कारण है कि अपढ़ और निरक्षर ग्रामीणों से लेकर अलंकारशास्त्रियों ने कहावतों के महत्व और गौरव को स्वीकार किया है। साधारण मनुष्य से लेकर विद्वान तक अपने विचारों की पुष्टि में कहावतों का प्रयोग करते है। समाज में प्रचलित कोई विचार ऐसा नहीं जिससे संबंधित अनेक कहावतें न हों। मैं इस लेख में बुन्देलखण्ड जनपद में प्रचलित व्यंग्य संबंधी कहावतों का ही अध्ययन प्रस्तुत कर रहा हूं। विवेचन के पूर्व व्यंग्य की कतिपय विशेषताओं को समझ लेना श्रेयस्कर होगा।

मनुष्य के विकास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए अनेकानेक साधन जुटाता रहता है। प्रबुद्ध होने पर वह अपने कथन को अधिकाधिक प्रांजल एवं प्रभावोत्पादक ढंग से कहने का प्रयास करता है। व्यंग्य इसी वाक्-कौशल का एक विकसित परिणाम है। एक पाश्चात्य विचारक का मत है कि 'शब्दों का घाव, तलवार के घाव से भी ज्यादा गहरा होता है।' कभी कभी शब्दों को इस प्रकार संयोजित करके रखा जाता है कि कड़वी बात भी मीठी लगने लगती है। कुछ कथन इतने व्यंग्यपूर्ण होते हैं कि वे अपने में अनेक अर्थ छिपाये रहते हैं। मूलतः व्यंग्य एक अभिव्यक्ति-कौशल है, जिसमें अपनी बात, विशेष भाव-भंगिमा सहित प्रस्तुत की जाती है। व्यंग्य का उद्देश्य मनोरंजन करना, व्यक्तिगत संत्रास, या कुण्ठाओं को मात्र अभिव्यक्ति करना ही नहीं होता, अपितु उसमें व्यक्तिगत अथवा समाजगत विसंगतियों, कुरूपताओं और दोषों की निर्मम चिकित्सा करने तथा स्वस्थ चेतना को जगाने का प्रयास भी रहता है, इस लिए व्यंग्य-विधा आत्मपक्ष से बुद्धिपक्ष के अधिक निकट मानी गई है, क्योंकि व्यंग्य अपने तीखे प्रहार से पाठक के बौद्धिक विचारों को जाग्रत करता है।

बुन्देलखंड जनपद में प्रचलित कई कहावतें ऐसी प्राप्त होती हैं, जिनका तीखा प्रहार समाज में व्याप्त पीड़ा, विषमता, कुरीति, अंधविश्वास, भुखमरी, बेकारी, गरीबी एवं नेताशाही का पर्दाफाश करती है। जब संयोगवश छोटा आदमी किसी ऊंचे पद पर पहुँच जाता है, वह अपनी मूलस्थिति को भूलकर

पद का रोब जमाने लगता है। शोषित समाज कैसे मौन रह सकता है, वह व्यंग्य में कहता है—'कब से राजा ईगुर भये, कोदों के दिन बिसर गये' या थोड़े दिन के लिए ऊँचे पद पर पहुँचने पर उसे 'अढ़ाई दिन के बादसा' की उपाधि से विभूषित कर देता है अथवा जब परंपरागत या वंशगत येन-केन-प्रकारेण की नीति से किसी अयोग्य व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठित किया जाता है, तब शोषित समाज उसे 'रानी जाये पूत' नामक कहावत कह अपनी भड़ास निकाल लेता है क्योंकि बड़े आदमी के पूत, सपूत ही होते हैं भले ही उनमें अनेक ऐब भरे हों। इसी तरह जब समाज के बीच का एक छोटा आदमी भाग्यवश थोड़े दिन के लिए अधिकार सम्पन्न हो जाता है, तब उसकी आवभगत करने वालों की कमी नहीं होती। उसके घर की देहरी देहरी न होकर हवेली का रूप ले लेती है और वहाँ हर साधारण स्थिति का आदमी मस्तक टिका सलाम पेश करने लगता है। तब समाज के हर मुख से यही कहावत निकलती है 'घर दिवारो सो पुजरओ।' और जब गरीब के घर कोई आनन्दोत्सव होने लगता है, तब अर्थ संपन्न लोग 'रांडो के घर मांडी' कहावत कह व्यंग्य-बाणों से उस गरीब का मजाक उड़ाने लगते हैं।

इस मायावी दुनिया में सीधे-सच्चे का गुजारा कहीं नहीं है। जाल-फरेब से लोगों को ठगने वाले आदमी ही मौज उड़ाते है। तभी ऐसे लोगों पर व्यंग्य कसा जाता है—'दुनिये ठगिये मक्कर सें, रोटी खैये सक्कर सें।' अथवा 'करम के दूने' या ऐसे धूर्तों को 'सब गुन भरी बेंतरा सोंठ' व्यंगित किया जाता है। दूसरों के पैसों पर मौज उड़ाने वालों पर जहाँ 'तेल जरै सरकार की, मिर्जा खेलें फाग' नामक कहावत प्रयुक्त होती है, वहाँ अपना मतलब गांठकर चल देने वालों के लिए यह कहावत बड़ी प्रसिद्ध है—'दम भाई किसके, दम लगाई खिसके।' इसी तरह बदनाम एवं चलते-पुर्जे आदमी के लिए 'दगे सांड' तो दूसरी तरफ कंजूस व्यक्तियों के 'दैबों को दमरी, बिछाबे को कमरी' अथवा दमरी की भाजी, घर भर राजी' प्रयुक्त होती है। जो केवल अपने मतलब की ही बात करें उन्हें व्यंग्य में 'तुमाओ सो हमाओ सो हें हें' कह तीखा प्रहार किया जाता है। जो आदमी खूब घिसे-पिसे एवं अनुभवी होते हैं उन्हें 'पके पत्ता' एवं 'तेजाब में डूबे हैं' आदि कहावतें से मण्डित किया जाता है।

समाज में अवसरवादियों की भी कमी नहीं। श्रम अथवा मेहनत तो कोई करता है, किन्तु यश-लाभ बीच के टिल्ले आदमी उठा ले जाते हैं। ऐसे अनुचित कार्य की भर्त्सना बुन्देली कहावत में व्यंग्य के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त की जाती है—'तेल जरै, बाती जरै, नांव दिया को होय।'

अथवा जब किसी प्रलोभन में किसी से फालतू कार्य कराये जाते हैं, तब कहा जाता है कि 'धरबे को मियां, सुलगावे को मियां। पीवे कों आप, टिकावे कों मियां।' और जब वह करते करते ऊब जाता है या उसकी बिगार से वे किसी कारण रूठ जाते हैं, तब फालतू कार्य करने वाला व्यक्ति व्यंग्य में कह उठता है 'तुमें रिसानी, हमें पुसानी।' अर्थात् तुम रूठ गए अच्छा हुआ, हमें भी छुट्टी मिली।

आज का भारतीय शिक्षित नवजवान पढ़ लिखकर अपने अथवा अपने घर के दैनंदिन कार्य करने में शर्म का अनुभव करने लगा है। ऐसी भारतीय शिक्षा प्रणाली पर व्यंग्य करते हुए कहा जाता है--'थोरो पड़े सो हर सें गये, भौत पढ़े सो घर सें गये।' अर्थात् थोड़ा पढ़ा लिखा युवक खेती किसानी करने में शर्म करता है। यदि कहीं वह ज्यादा शिक्षित हो जाता है, तो समझिये कि वह घर से भी चला जाता है और पालक की स्थिति कुछ इस प्रकार होती है कि 'दोई दीन सें गये पांडे, हलुवा मिले न मांडे।' कहावत में शिक्षित युवकों की अपने परिवार के प्रति उत्तरदायित्वों की उदासीनता स्पष्ट झलकती है।

बुन्देलखंड जनपद अपनी आनबान के लिए प्रसिद्ध है। इस स्वाभिमान को एक कहावत में भी गुम्फित किया गया है। जब कठिन दुःख भोगते हुए भी कोई व्यक्ति अपना स्वाभिमान अथवा आनबान न छोड़े, तब प्रायः कहा जाता है कि 'राजा मरतन तो मर गये, पै हंसबो नई गओ।'

इसके अतिरिक्त 'नाक सें अफरें बैठे', 'तनक तमाखू गजब करावे', 'छोटे सबसें खोटे', 'खूब खाई ताती ताती', 'किलो फत्तें कर आय' आदि बुन्देल कहावतें व्यंग्यात्मक हैं, क्रमशः ऊबने से, किसी वस्तु को जब कोई बांटकर न खाय और स्वयं सब रख लें, अनोखी चाल चलना, तमाखू के अवगुणों पर, बालकों की वाजायज हरकतें, नियमानुसार आदर सत्कार न होना, तथा कामचोर व्यक्ति जब कभी थोड़ा सा काम कर बड़े भारी काम कर देने की डींग मारे तब प्रयुक्त होती हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बुन्देलखंड का उपेक्षित एवं शोषित समाज भले ही कम पढ़ा लिखा अथवा कृषक हो, किन्तु वह मूर्ख अथवा डरपोक नहीं है। वह निडरतापूर्वक अपने समाज में चहुं ओर व्याप्त वैषम्य को दैनंदिन की लोकव्यवहार में आने वाली बोली में ही तीखे शब्द प्रहार करता है। इसके अतिरिक्त बुन्देली कहावतों में सामाजिक कथाएँ, लोक विश्वास, कृषि विश्वास, स्वास्थ्य तथा अन्य परम्परागत ज्ञान को भी गुम्फित किया गया है, जिसका अध्ययन स्वतन्त्र रूप से किया जा सकता है।

—१९२ कोतवालीवार्ड, जबलपुर

आश्विन मास के उत्सवों से जुड़ी कथाएं / डा० आर० पी० गुप्त

बुन्देलखण्ड में मामुलिया, सुअटा, टेसू, अकती; भुजरियां, जवारे आदि उत्सव मनाये जाते हैं ये सभी उत्सव अपने मूल में रोचक एवं तात्विक घटनायें संजोये हुए हैं। इन सबके पीछे सारगर्भित इतिहास है।

मामुलिया और सुअटा बुन्देलखण्ड के जाने-माने उत्सव हैं। इन दोनों उत्सवों की सम्पन्नता लगभग एक ही समय; आश्विन मास शुक्ल पक्ष में होती है। आश्विन मास में दशहरे से पूर्णिमा तक टेसू उत्सव मनाया जाता है। टेसू यद्यपि मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड का उत्सव नहीं है. तथापि बुन्देलखण्ड क्षेत्र से निकटवर्ती ग्वालियर, आगरा, मथुरा में टेसू उत्सव बुन्देलखण्ड के कुछ भागों को प्रभावित करती है। मामुलिया और सुअटा लड़कियों से सम्बन्धित उत्सव हैं, जबकि टेसू लड़कों से सम्बद्ध।

सुअटा को एक राक्षस माना गया है। इससे सम्बद्ध इस प्रकार की लोक कथा है कि कन्यायों के अभीष्ट की प्राप्ति में विघ्नकारक एवं उनका अपहर्ता सुअटा नामक राक्षस था। उसके प्रतिकार के लिये आप्त लोगों द्वारा कन्याओं को गौरी पूजन का उपदेश दिया गया। बालिकाओं ने तदनुसार नौ दिन गौरी-पूजन करके उक्त विपत्तिकारक का निराकरण किया। तभी से सुअटा विघ्न के निवारणार्थ गौरी-पूजन से यह सुअटा उत्सव सम्पन्न होने लगा। नववधुओं का गौना भी सुअटा पूजन के पश्चात् ही होता है, ताकि उनके दाम्पत्य जीवन में सुअटा जैसा विघ्नासुर प्रवेश न कर सके।

मामुलिया उत्सव के मूल में भी कुछ घटनायें आबद्ध हैं। लोक प्रचलित कथाओं में एक कथा के अनुसार एक मामूली (सामान्य) परिवार की, किन्तु अत्यन्त रम्य बालिका पर तत्सम्बधित जनपद का राजकुमार रीझ गया। दैव-वश मामुलिया को उसकी सखी सहेलियों द्वारा विविध प्रकार से सजाकर उसके चाहने वाले के समीप पहुँचाया गया। यहां फारसी के 'मामूली' शब्द से बुन्देल-खण्डी 'मामुलिया' शब्द का सृजन भले ही लोगों को अनौचित्यपूर्ण लगे, लेकिन वास्तविकता यह है कि शब्द किसी कि धरोहर नहीं है। संस्कृत पितृ, लैटिन पेटर, अंग्रेजी फादर और हिन्दी पिता, इन सब में उच्चारण का अधिक वैषम्य भी नही है और शब्दार्थ तो एक है ही। इसलिये 'मामूली' शब्द से मामुलिया का सृजन भी कोई अनोखी बात प्रतीत नहीं होती। मामुलिया को

भामा शब्द से भी सम्बद्ध किया जाता है, लेकिन इसके पीछे किसी तारतम्य-पूर्ण कथा की उपलब्धि नहीं है।

मामुलिया के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रचलित लोकगीत 'मामुलिया के आये लिबउवा' से तो यही प्रतीति होती है कि एक भोरी गोरी किशोरी को उसके प्रियतम का सान्निध्य कराया जा रहा है और वह प्रियतम लौकिक ही है, न कि कोई अध्यात्मतत्व वस्तु, लोक प्रसिद्ध किसी पात्र द्वारा सामान्य जन की चाह ने 'मामुलिया' उत्सव का समारम्भ कराया।

टेसू उत्सव भी आश्विन मास में दशहरे से प्रारम्भ होकर शरद पूर्णिमा तक सम्पन्न होता है अन्तिम दिन टेसू का परिणय कराया जाता है। टेसू की कथा महाभारत काल से सम्बद्ध है। अमोघ शक्ति प्राप्त, अतएव पाण्डवों की सेना का नेतृत्व करने की इच्छा वाले घटोत्कच के पुत्र बरबरीक का, उसकी दृप्तता के कारण श्रीकृष्ण द्वारा शिर छिन्न कर दिया गया। उसके विच्छिन्न शिर में जीवन था और उसने इच्छा व्यक्त की कि महाभारत युद्ध-दर्शन के पश्चात् ही मेरा प्राणान्त हो। श्रीकृष्ण ने उसको इच्छापूर्ति के लिये उसके सिर को तीन बाणों से बींधकर ऊँचे टीले पर रख दिया। तत्पतः उसने महाभारत युद्ध देखा। युद्ध समाप्ति पर अपने प्राणान्त के समय बरबरीक अपने विवाह की इच्छा लिये पंचतत्व में विलीन हो गया। बरबरीक की इसी विवाह की इच्छापूर्ति हेतु टेसू उत्सव सम्पन्न हुआ। तीन लकड़ियों पर एक शिर का रूप संजोकर बालकों द्वारा गीत गायन से बरबरीक का विवाह सम्पन्न कराया जाता है। इस उत्सव का टेसू नामकरण इसलिये हुआ कि बरबरीक के शिर विच्छिन्न होने पर उसके रक्त से टेसू (पलाश) में फूलों का प्रस्फुरण हुआ। विवाह में बरबरीक स्मृति के लिये ही पलाश (छेंवले) के मण्डप निर्माण का विधान भी है।

निष्कर्षत: यह उल्लेखनीय है कि किसी देश या प्रान्त की ही नहीं, अपितु उसके छोटे से छोटे घटक की भी एक मौलिक संस्कृति होती है और उस संस्कृति में तत्सम्बन्धित प्रभावशील विविध उत्सवों का प्रचलन अवश्यमेव किसी न किसी घटना, कथा, गाथा एवं इतिहास को लेकर होता है। इन उत्सवों के सरस, सुमधुर, मार्मिक, प्रेरक एवं लोकोपकारक इतिहास का शोध आज के बुद्धिजीवियों द्वारा अवश्य ही करणीय है। ऐसे अनुसंधान मानसिक संतृप्ति के प्रदायक होने के साथ-साथ लोक के प्रेय और श्रेय के लिये भी सार्थक सिद्ध होंगे।

—सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय दतिया।

संस्कृति के सुमनों से सजो मामुलिया एक बुन्देली खेल / डा० हरिसिंह घोष

मामुलिया पितृपक्ष में पूरे पन्द्रह दिनों तक नित्य त्योहार की तरह मनाया जाने वाला बुन्देली संस्कृति का एक ऐसा अनूठा खेल है, जिसका अन्तरतम् एक अनबूझी पहेली-सा आतुर है कि कोई उसे बूझे और कोई उसे जाने।

खेल... ? जी हाँ. त्योहार की तरह मामुलिया का माह, पक्ष, तिथियां और विधान निश्चित हैं और इसमें पूजा, हँसना-खेलना, गाना-बजाना, भोजन पदार्थों तथा मिष्ठान्नादि का आयोजन भी होता है। इसकी अधिष्ठात्री मामुलिया ही है। परन्तु बुन्देली खण्ड में यह बालिकाओं के खेल के रूप में मनाया जाता है। खेल प्रधानत: चार प्रकार के होते हैं—(१) आत्म मनोविनोदार्थ खेले जाने वाले, (२) प्रेक्षकों की प्रसन्नता के लिये खेले जाने वाले, (३) धर्मोत्सव प्रधान, (४) मिश्रित—(जिसके प्रकार विषय में भी संदेह हो)। मामुलिया एक धर्मोत्सव प्रधान खेल है। गीत के बोल हैं—'भौजाई खेलै मामुलिया'। कहते हैं कि स्त्रियां भी मामुलियाँ खेलतीं थीं, किन्तु न मालूम कब से इसे क्वाँरी कन्याओं को सौंप दिया गया। यह अप्रतिम खेल कोई अनकही बात अपने में संजोये है, जिसे न कोई कहता है और न कोई सुनता है।

धर्म और जीवन का मेल हमारी संस्कृति का आग्रह है और जन्म से मृत्यु-पर्यन्त जीवन का नियमन करने वाले संस्कारों के लिये आपसी प्रबन्ध एक आवश्यकता है। हमारी संस्कृति तरह-तरह के रंगों से जीवन का हर कोना रंगती रहती है, अगर उसने मामुलिया जैसे खेल को अपने रंग में रंग लिया हो, तो कोई बड़ी बात नहीं है। मामुलिया में संस्कृति-सुमन कब पिरोये गये, मालूम नहीं, किन्तु प्रत्येक सुमन एक सूत्र गुनगुना रहा हैं सुनने वाले के लिये। कृष्णपक्ष का पहला दिन, बालिकायें 'मामुलिया' खेलने को एकत्र होती हैं और गीत के स्वर गूँज उठते हैं—

मोरो भइया रखावै खेत
भोजाई खेलै मामुलिया।

जड़ और चेतन का आपेक्षिक मूल्यांकन करने वाली संस्कृति में उपेक्षा को स्थान कहाँ ? जो जड़ की उलझन को समझ सका वह चेतन को कैसे समझ सकता है ? बलिकायें जड़ता का प्रतीक स्वरूप एक कांटेदार झकड़ा उखाड़ लाती हैं और उसमें सुन्दर आकर्षक एवं सुगंधित विभिन्न प्रकार के चेतना-पुष्पों को सजाती हैं। इस प्रकार परस्पर विरोधी भावों को गूँथते हुए हमारी संस्कृति की समन्वय प्रधान दृष्टि को प्रतिष्ठित करती हैं। पुष्पों की भीनी-भीनी सुगंध के साथ ही गीत के स्वर भी लहरा उठते हैं—

लइयो-लइयो रतनगढ़ फूल
सजइयो मोरी मामुलिया,
लइयो गेंदा हजारी के फूल
सजइयो मोरी मामुलिया,
लइयो चंपा-चमेली के फूल
सजइयो मोरी मामुलिया,
लइयो घीया-तुरइया के फूल
सजइयो मोरी मामुलिया,

हमारी संस्कृति में नारी का चण्डीरूप, प्रतिद्वन्द्विता और संघर्ष से बहुत दूर, सहज ही अपनाये गये अनुगामित्व धर्म से आभूषित तथा अपने अपनत्व के समर्पण से सुगंधित भला किसे नहीं लुभा लेता। रंग-बिरंगे विभिन्न फूलों से नयी-नवेली दुलहिन-सी सजी मामुलिया को कलात्मक चौक के बीच प्रतिष्ठित कर बालिकायें फल एवं मिष्ठान्नादि समर्पित करती हैं और परिक्रमा देते हुए गीत के स्वर गुनगुनाने लगती हैं—

मामुल दाइ, मामुल दाई दूध-भात न खायें,
बबुरी के घोके बिनौला चबायें,

यद्यपि नित्य सत्य, रस-परिपूर्ण और प्राप्त करने योग्य तत्व चैतन्य को पाने का सचेष्ट प्रयत्न की प्रेरणा ही हमारी संस्कृति का इष्ट है, तथापि बिना कर्म के जीवन की स्थिति सम्भव नहीं। बालिकायें अपनी प्रिय सखी को जीवन के विधिवत कर्म में प्रवृत्त होने को प्रेरित करते हुए उसे ससुराल के लिये विदा करने का उपक्रम करती हैं। गीत के बोल भी यही कह रहे हैं—

मामुलिया के आये लिबउआ
छुमक चली नौनी मामुलिया।

मन को दृढ़ता से लोकहित में बाँधने एवं उसमें उदात्त भावों को भरने के लिये त्याग और तप की आवश्यकता होती है। त्याग की भावना को सामाजिक स्तर तक उतार सकने और बुन्देलखण्ड की ससुराल में सामान्यतः बहू की दिन

चर्या में सम्भवतः कोई अन्तर नहीं। बालिकाओं को सत्य कहने में किसका डर। यह अनूठा लोकगीत गलियों में रस-वर्षा करने लगता है—

चली चकोटी चली मकोटी चंदन चौका करियो लाल।
ऊ चौका में बैठे बीरन भइया पागड़ियां लटकावें लाल।
उन पागड़ियन के फूल झरत हैं बीनत हैं भौजइयाँ लाल।
झिलमिल-झिलमिल दिया बरत है परखत है रुपइया लाल।
एक रुपइया खोटो कढ़गओ मार भगाई भौजइयाँ लाल।

त्याग की तपोभूमि में विरोधात्मक तत्वों के साथ संघर्ष मानों एक आवश्यकता है। नव वधू ससुराल वालों के नाज-नखरों से अपने आपको सामंजस्य नहीं कर पाती, कभी न सुलझाने वाली समस्यायें उसे परेशान कर देती हैं। भोली बालिकाओं के मुख से मुखरित लोकवाणी हृदय के मर्मस्थल को छू लेती है—

नानो पीसँ उड़ उड़ जाय,
मोटो पीसँ कोउ न खाय,
नई तिली को तेल तिलिनिया लो लो लो,
नये हुड़ा को भात बनिनिया लो लो लो।

देह और प्राण की संकुचित सीमाओं से ऊपर उठे होने के कारण नारी हमारी संस्कृति में देवी है। उसका आत्म-निवेदन इतना पूर्ण, गंभीर और व्यवस्थित होता है कि कोई भी परिस्थिति, कोई भी विपत्ति उसे उसके स्वात्म-स्थिति से नहीं गिरा सकती। मामुलिया का यह खेल नारी जीवन के इन साधना-क्षणों का दर्शन कराती है, किन्तु उसके मातृत्व रूप को छोड़ देती है। संघर्ष के क्षण ही प्रशंसनीय होते हैं। साधना की पूर्णता परमशान्ति ही है, बालिकायें गहन जल में मामुलिया को विसर्जित कर घर लौटते समय मन के क्षोभ को गीत की इन पंक्तियों में व्यक्त करतीं हैं—

जरँई छाबी तला कौ पानी रे
मोरी मामुलिया उजर गई।

दिन भर बात चली / अवधकिशोर श्रीवास्तव 'अवधेश'

आज बड़े भुन्सरां फैल गइ चरचा गली गली
इक गोरी की इक रसिया की दिन भर बात चली।

सई सांझ झुलपुटें घरै जब लौटो सबरौ गांव
पिछवारे से घुस गओ रसिया धर धीरें सें पांव
बात कमलन खों मौत खली।

गओ उजेरौ भओ अंधेरौ सूझ परी न देव
गोरे हांतन रोते दिबला गोरी भरो सनेव
दिया की बाती देख जली।

धरती डारी धौरी चूनर नभ पे कारी चोली
बाहर फिरत देख चंदा खों चकवा चकवी बोली
दार चंदा की नई गली।

टूट गओ हीरन को हरवा बगर गई सब कनियां
हांती कैसी गैल फैल गई कम्मर की करधनियां
न जाने कब की रात ढली।

गोरी ओढ़ी धौरी चूनर बांदी कारी चोली
उठौ सखी पीसौ की धुन में श्याम चिरइया बोली
लई अंगड़ाई आँख मली।

गोरी खोली पुरब किवरिया सूनो नभ आंको
लाल लाल मौं करें लाज सें तब छलिया झांको
तबई सब जग की आँख खुली।

तरवर पजन दईं तारियां पंछिन सोर करो
बाग बगीचा हँसे हवा कौ आंचर सरक परो
सुमन की खिल गई कली कली।

—३५०/२ नई बस्ती, झांसी

शायद बागवान का डर है / रत्नदीप खरे 'मयंक'

ठीक ठाक मौसम के तेवर और न खतरा पतझारों का,
लेकिन कली नहीं खिलती है शायद बागवान का डर है।

अब तो सम्बन्धों के ऊपर
जाने कैसी पर्त चढ़ी है,
जब जब मधुर बनाना चाहा
तब तब और दरार बढ़ी है,

ना तो खतरा राहजनी का और न चोरी की है चिन्ता,
मन फिर भी घबराया करता शायद मेहरबान का डर है।

जीने को तो उम्र पड़ी है
जीने के बस साधन कम हैं,
जिनने कभी सन्त्वना दी थी
उनकी भी तो आंखें नम हैं,

सुविधाओं में जीने की तो अब हमने उम्मीद छोड़ दी,
जो खुद नहीं चाहते जीना उनको अभयदान का डर है।

अपनी कोई फिक्र नहीं है
उनकी ही चिन्ता है सारी,
जिनके अशीषों से घटकर
आधी रह गई उम्र बेचारी,

रूप हाट में घूम रहे हैं तथाकथित संभ्रान्त लोग सब,
जिनके कोई न आगे पीछे उनको खानदान का डर है।

—सेन्ट्रल फारेस्ट रेन्जर्स कालेज, चन्द्रपुर, महाराष्ट्र

कहानी

अफीमचा कौवरदान / डा० श्याम सुन्दर बादल

पुल्ले बानियाँ गाँव भर में 'मुनीम' कहाउत ते। बात जा हती कै बे मिसर म्हाराज के लेन-देन के कारोबार की लिखा-पढ़ी करत रात ते। उनें साल भर में एक गौन गल्ला औ सवा सौ रुपैया मिसर म्हाराज दओ करत ते, एतसें उन्नें दुकान को काम-काज अपने छोटे भैया चुक्खीं पै छोड़ दओ तो। चुक्खीं की घरवारी रावरानी भौतऊ पतिवरता हती, ईसें बा पति-सेवा में रुचि तौ राखतऊ हती, पै घर-गिरस्ती को औ दुकानऊँ को काम-काज सँवारत रात ती। बात जा हती कै चुक्खीं खाँ को जानें कैसें अफीम खावे की आदत पर गई ती औ बा आदत धीरें-धीरें बढ़त-बढ़त रोज तोला भर खावे की हो गई। एक बेर में तो चारइ आना भर खात ते, पै दिन भर में तोला भर खा लेत ते।

चुक्खीं के अफीम के नसा में दिन भर धुत्त रहबे सें उनकी दुकान चौपट हो जाती, पै रावरानी ऊ की देखभाल करन लगी ती, ईसें बा चलत रई। अफीम को खरच जब दुकान सें पुरो न होय, तो घरवाली के जेवर वैंच कें वे ऊयैं पूरो करन लगे। रावरानी उनें मीठे बोलन बोल-बोल कैं समजा उत तो रात ती कै—

"स्वामी जो नसा अच्छो नइयाँ। दुकान की आमदनी एइ में खरच हो जात, तो हम-तुम खाँय का? भगवान नें जोड अच्छो करो कै अपुनखों बाल-बच्चा नइं दए। दाउजू (पुल्ले मुनीम) तुमाई जेई नसावाजी सें ऊब कें अलग रान लगे। मुनीमियई में बे गुजर कर लेत, बाल-बच्चे पाल्लेत। दुकान उन्नें तुमइं खों छोड़ दई ती, पै दुकान कौलों पूरो करै।"

चुक्खीं की समज में कछू नइ आउत तो। बे रावरानी कीं बातें सुनीं-अनसुनीं कर देत ते। एक रात चुक्खीं के पांव दाबत-दाबत रावरानियऊं खों नींद आ गइ, तो ओइ खाट पै बेउ पर रइं। भौत रात बीतें चुक्खियऊं खों नींद आ गई। बे उठे, रात की खुराक ढूंढ़ी, खाई और पर रए। धीरें-धीरें-

नसा चढ़ो औ सो गए। भुनसारे पारैं जब नींद टूटी तो उनें लगो कै हमाई जाँग खुजा रई ऐ, सो नसा की बेहोसी में अपनी जाँग न खुजा कें रावरानी की जाँग खुजान लगे। जब खुजली न मिटी, तो औरउ जोर जोर सें खुजान लगे। खुजात-खुजात भौत देर हो गई। रावरानी कष्ट सउत रई, पै ना तो कछू बोली, ना ऊनें अपनो पाँव हटाओ। ऊयैं लगो कै कऊँ जे नसा की मस्ती में अपनी जाँग खुजात-खुजात खून ना निकार लें। रावरानी को सोचबो सधो भओ। बे रावरानी की जाँग तौलों खुजात रए जौलों खून की धार न बै उठी। जब उनें अपनी उंगरियाँ गीली गीली लगीं, तो का देखो कै बे खून सें भर कें लाल-लाल हो गईं। उजयारो हो आव तो, उठे औ का देखत कै हम अपनी नई बरन् ई की जाँग आय खुजा रए ते। ई खों धन्य है कै जा कष्ट तो सात रई पै मो खों नई रोको। ऊपै बे भौतऊ खुस भये उर बोले—"तैंनें मोये लानें भौत कष्ट सओ, पै ना तनकउ पाँव हलाओ, ना मोय मना करो। मैं तो तोरो भौतऊ रिनियाँ आँवें तैं मोसें मनचाव बरदान माँग ले। मैं दैहों।"

रावरानी ने बरदान की बात सुनी तो बोली—"जो तुम मोय मनचाव बरदान दैन चाउत, तो आज सें अफीम मोरे हाँतन सों लैकें खावो करें।"

चुक्खीं नें अपनी घरवारी की बात मान लई औ अब ओइ के हाँतन अफीम खान लगे। आठ दिना तो ऊनें चाउर बेरा चार चार आना भर की खुराकें खबाईं, फिर धीरें धीरें कमाउन लगी। एक मईनाँ साढ़े तीन तीन आना भर की खुराकें खबाईं। दूसरे मइनाँ तीन तीन आना भर कीं। चुक्खीं बिस्वास में खात रए, उनें कछू पतो न परो। आगें तीसरे मइनाँ में रावरानी ने तीन तीन सें ढ़ाई ढ़ाई आना भर की खुराकें कर दईं। चौथे मइनाँ में ऊनें चार बेर न खबा कें तीनईं बेर तीनई तीन खुराकें खबाईं, फिर पाँचएँ मइनाँ में दोइ बेर खबान लगी। छठएँ मइनाँ में दोइ टैम दोइ दो आना भर कीं खुराकें हो गईं। अब ऊनें साल भर लों लेइ नेम चलाओ।

रावरानी घर को काम देखै, दुकान चलाय औ अपने स्वामी खों दोइ टेम अफीम खबावै। चुक्खी खों कछू कष्ट ना भओ। बे दोइ दो आना भर की खुराकन में खुसी रान लगे।

दूसरो बरस लगो औ रावरानी नें पौने दो आना भर की खुराक कर दई। एक मइनाँ एसइं काटो। दूसरो मइनाँ डेढ़ आना भर दोई बेरां दैकें पूरो करो। तीसरे मइनाँ में आना भर की खुराक कर दई। चौथे मइनाँ में जब दसरओ (विजयादशमी का पर्व) आओ तो जो परव ऊखों साँचो विजय को परव बन गओ।

ई दिना ऊन अफीम की बेरां पान को बीरा मगाकें खबाओ औ चुकवी नें ओठ में संतोस कर लओ। चुकवी दो चार दिना पानईं में काटे और फिर पानईं को खबो छोड़ दओ। अब उनको घर के सब कामन में मन लगन लगो औ अच्छी तरां दुकान चलाउन लगे। दुकान में जब लोग नाज लैकें सौदा लेन आवें तो उनें जादां अच्छो लगे। कछू सस्ते भाव में गल्ला लेकें कमा लेवें और सोना बेंच कें तो कमाउतई रए।

अफीम को खरचा कमई गओ हतो। एकई साल में उन्नें अपनी धरम पत्नी खों पैलां कैसो जेबर बनवा दओ औ दुकानउ पैलां सें जादा बड़ा लई।
कमऊँ कमऊँ खुसी में आकें राबरानी सें केउ कें देवें कें तोओ बरदान देकें मोरी अफीम छूट गई।

राबरानी को अपने स्वामी की जा बात सुन कें भौतऊ सान्ती मिलन लगी। अब वा अपने घरबारे की सेवा में औरऊ भौत मन लगाउन लगी। दाउजू (पुल्ले मुनीम) सोउ अब खुसी रान लगे।

राठ (हमीरपुर) म०प्र०

झल्लो चाची | सुरेन्द्र सिंह राजपूत

झल्लो चाची खें हमाये गाँव में सब कोऊ जानत। उनके पति जुम्मन चाचा तो सीदे सान्त आदमी हैं, पे चाची सुभाव की तेज हैं। वे बतखाव भौत जादां करतीं। सायत एई सें उनको नाँव झल्लो चाची पर गओ। वे पढ़ी-लिखीं बिलकुलऊ नइयां पे उनें कछू दिना पैलां लों अपनी चतुराई को बड़ो अभिमान रहे करता तो। उनके सामूं कोनऊ नई जानकारी की चरचा होय ता वे तुरन्त बोल परतीं 'मैं तो जानता हों, मैं तो जानत हों, मोखां तो पता है।'

झल्लो चाची को जो बड़-बड़ कें बतेबो काऊ खें साजो ने लगत तो, पे चाची के खरे सुभाव के मारें काऊ के टोकबे की हिम्मत न परत तो। पीठ पछाऊँ जा चरचा खीब भये करत ती कि कमऊँ न कमऊँ चाची अपनी अकलमंदी के दिखावा को फल जरूर भुगत है जुम्मन चाचा ने दो-एक बेर समझओ, पे उनपे कछू असर न भओ।

एक दाईं ऐसो भओ के चाचा की आँखीं आ गईं। खूब किरकिराहट होत ती सो वे बोले--"सुनत हैं आँखिन सें पेनसिली को खूब फायदा करत है।" चाची तुरन्त बोल परीं—"मैं तो जानत हों, मोखें तो पता है। अबई काऊ सें मंगवायें देत।"

परोस को एक पढ़ैया लरका बजारें जात ते सो चाची ने ओई सें पेनसिलीन मंगवाई। जब ऊ लरका दवाई लेकें लौटो तब चाची रोटी बना रईं तीं उर चाचा कऊँ बायरें कढ़ गये ते। लरका बोलो--चाची, लेव जा है पेनसिलीन, पे एखें संभार खें धरियों। चाची बोलीं'--'मैं तो जानत हों, मोखें तो पता है। उतई बरामदा की अलमारी में धर दे।' लरका ने दवाई अलमारी में धरकें कई--'अच्छी तरां सिहार लइयों, एमें कुल्ल औरऊ चीजें धरी है।' चाची बोली--मोखें सब पता है।

थोड़ी देर में चाचा आ गये सो चाची ने अलमारी से ट्यूब निकार कें ओकके मल्हम चाचा की दोऊ आंखन में खूब भर दओ। चाचा बोले--'जो तो लटो चिनमिनात है, काय आय लगा दओ।' चाची बोलीं--'पेनसिलीन आय। चुप्पां आंखी मीचें परे रहो, थोड़ी देर में सब ठीक हो जैहे। चाचा भौत देर लों करों जी करें परे रहे। एके बाद जब उनने आंखी खोलने को मन करो ता वे बन्द होकें रै गईं। पलक चिपक कें रे गये, ऊपर उठतई ना ते। चाचा चिल्लाने—"यो जाने का हो गओ। दइया रे हमाई आंखींई नईं खुल रईं।" उनकी जा हालत देखाकें चाचिऊ की सिट्टी-पिट्टी भूल गई।

चाचा खँ बैलगाड़ी पे बैठा कर के चाची असपताले पोंचीं। उतै डाक्टर ने जांच करकें के बताओ ठीक तो हो जेहै, पे तुमे सौ रूपइया फीस के लगें। चाचा बिचारे का करते ? हां केने परी। आँखिनबाली बात आय ती। डाक्टर ने रुई के फूहा में एक दबाई लेकें धीरे-धीरें सफाई करी सो थोड़ी देरे में आँखीं खुल गईं। डाक्टर की फीस दैकें जे अपने घरे लौट आये।

इतै आँखिन को हाल जानबे के लाने चाचा के दोरें कुल्ल आदमी जमा हो गये। जौन लरका दबाई ल्याओ तो, चाची ओखें मन चाओ बक रईती। ऊ बोलो—"चाची मैं तो खूब साजी दबाई ल्याओ तो।" चाची तुरंत झपट के भीतर सें ट्यूब उठा ल्याईं उर बोलीं—"लेव, सब जने देख लेव एकी दबाई।" लरका बोलो—"बा, चाची, मैं जो थोरी ल्याओ तो। तुमने आँखिन में जेई आय भर दओ तो का ?' 'चाची बोलीं'—'हओ, और नईं का लगाते ?" सब जने बोल परे—"जा खूब रही, जो तो साइकिल के पंचर जोरत बाल सलूसन को ट्यूब आय।"

लरका बोलो—"मोरो ल्याओ ट्यूब तुमने कहां धरो ?" चाची ठुमक के बोलीं—"जेई तो आय।" लरका बोलो—"जो केसें आय। चलो मैं बताऊं, जहां मैंने धरो तो।" उतै जाकें दिखो ता पेनसिलीन अलमारी में जहां की तहां धरी ती। लोगन ने कही—"चाची तुमने जो काये ने लगाओ अब चाची चिमक के रे गईं। ऊ लरका बोलो—"मैं इने बताउत रओ तो, पे जे हेरी लौंक नातीं। कहतीं कि मैं तो जानत हों, मोखें तो पता है।" अब बताऊ एमें मोई का गलती है।"

सब कोऊ समझ गओ के सोरऊ आना गलती चाचियई की आय। सब हाल दिखत दिखत चाचऊ तमतमा उठे उर बोले—"एके लच्छन तो जाने आयें। जहाँ दिखां तहाँ, जानकार की दाई वनी रात में तो जानेत हों, मैं तो जानत हों। आज एने मोई आँखी फोरन में कसर नईं लगाई।" ऐसो कहत-कहत उनने डंडा उठाकें चाची खों दो-तीं जमक दये। बोले—अपनी अक्कलमंदी के मारें काऊ कों सेंटतई नईंयां।" चाचा ऊ दिना ताव में हते, बिलात ठोंक डारते, पे आदमियन ने पकर लओ।

बस ऊ दिना से चाची की अकल सही हो गई। बतखाव जादाँ करबे को उनको सुभाव तो नईं बदलो, पै अब अँगारूं-अंगारूं नईं बोलतीं कि मैं तो जानत हों, मैं तो जानत हों।

सो भइया हरो आदमी होय चाय औरत सब को पढ़ो लिखो होबो जरूरी है। और अपनी चतुराई को जादाँ दिखावा सोऊ न करो चाइये।

अतरौलिया राठ. हमीरपुर उ० प्र०

तिरिया सें राजा / डा० एस० पी० रूसिया

आजकल को बिग्यान उर जे बिलायत के डाक्टर, जौन लोगन खां बईयरं उर बइयरन खां लोग बना देत, सो इसें और गजब तो हमाये पुरानन में है, कै कोई आदमी खां चाय बईअर बना दें उर चाय जब लुगवा। ऐसई एक सांसी किस्सा जा सुना रये कै राजा सुदुम्न कैसें तिरिया बनकें फिर राजा बने।

गुनबू करत कै बिवस्वान मनु कें सिराध देव नाव को एक बेटा हतो। ऊ बेटा कें कोनऊं सन्तान नै हती। बसिस्ट माराज की राय सें ऊने पुत्रस्ट जग्ग करावे बाले ब्राहमन सें बिनती करी कै माराज अपुन ऐसो उपाव करो कै मोरी कूख सें कन्या होवे। सो जग्ग करावे बालो मनई मन 'कन्या होवै' रटत-रटत हुमन कराउन लगो। ऐसी उलटी गंगा बहाये सें इला नांव की बिटिया भई। राजा विवस्वान मनु बिटिया देखकें उदास हो गये। उनने बसिस्ट जू सें पूंछी कै माराज जो उलटो फल कैसें मिलो ? राजा बिवस्वान की बात सुनकें माराज बसिस्ट जू ने ध्यान योग सें सब कछू पतो चला लाओ कै ई को कारन जग्ग करावे बाले की गलती आय। बसिस्ट जू ने तब ऊबिटिया इला खां पुरस बनावे के लाने भगवान सिरी हरि की बिनती करी। मुनि जू के तप उर भगवान की किरपा सें बा बिटिया इला सबई के देखई देखत पुरस कीसकल में बदल गई। कोई बखत माराज बसिस्ट जू न संस्कार करकें इला को नाव सुदुम्न रख दओ। वे सुदुम्न ऐसे भारी विद्वान भये जैसें बिद्या के बड़े भारी समुन्दर होयें। जब बे सयाने भये, सो एकबार घोड़ा पै चढ़कें सिकार खेलबे खां जंगल में चले गये।

एक बेर की बात है, ऊ जंगल में देवतन कै देवता भगवान संकर अपनी प्रान प्यारी पारबती जू के संगै हँसी-खुसी सें बिचरन कर रयेते। कोई बेरां उनके दरसन करबे के लाने कछु मुनी लोग उतै पौंचे। उनखां देखकें पारबती जू सकुचा गईं। जब मुनिअन ने देखो कै भगवान संकर उर पारबती जू हँसी-खुसी में अपनो मन रमा रये, तो बे तुरन्तई लौट क बैकुंठ खां चले गये। अकेले भगवान संकर ने अपनी पिरान-पिआरी पारबती जू खां खुस करबे की मंसा सें सराप दै दई, कै आज सें जो आदमी ई बन में अहै ऊ औरत हो जैहै, सो ओई बेरा सें कोऊ ऊ जंगल में न जाबू करे। बिधि को विधान कोऊ नई

जानत सो सिकार के पीछूँ-पीछूँ माराज सुदुम्न ओई जंगल में पौंच गये। जैसई बे ऊ जंगल में घुसें अई हते कै उनकी सूरत औरत की हो गई। संग के सबई आदमी सोई औरत हो गये। जौन उनके घोड़ा हते सो बेऊ घुरिया बन गये।

अपने खाँ औरत बनो देखकें सुदुम्न खाँ बड़ो अचरज भओ, पैसो अब औरतई हते। औरतन घाई नाक-नकसा, खूब सूरत उर ऊसई हाव-भाव। लगै जैसें कोनऊँ इन्द्र की अपछरा आय उतर आई सरग सें। अब बा जंगल में इतै उतै फिरन लगी। एक दिना भूलत-भटकत बा अपछरा बुध मुनि के आसरम के अंदर पौंची। ऊ की खूबसूरती खाँ देखकें मुनि जू के मन में कछु खुटाई आ गई उर बे ऊ अपछरा के पाबे की सोचन लगे। उतै बा अपछरा सोई मुनि जू खाँ अपनो पति बनाबे की मंसा बताउन लगी। होत करत मुनि जू के संयोग सें कछु दिनन पाछें ऊ अपछरा की कोख सें पुरुरवा ने जनम लओ। ई परकार सें मुनि जू के आसरम में रात-रात ऊ खाँ केऊ सालें हो गईं।

एक दिना की बात ऊ अपछरा खाँ अपने पैलाँ के हाल की खबर आ गई। खबर के आउतनई ऊ खाँ अपने मन में मोतऊ दुख भओ। फिर तो बा निकर कें तुरतई गुर बसिस्ट के आसरम में पौंच गई उर उन खाँ पिरनाम करकें अपनो सबरु हाल के सुनाओ उर फिरकें आदमी होबे की मंशा जता कें उनई की सरन हो गई। सब बातें जान कें बसिस्ट जू कैलास परबत पै गये उर संकर जी की अच्छी तरा सें पूजा रचा करी। भगवान संकर जू पिरगिट भये उर बोले पंडित जू अपुन कै जो कछु मन में होय सो माँग लेओ। बसिस्ट जू ने उनके चरनन में अपनो मूंड़ औंदा दओ उर ऊ अपछरा के आदमी बन जाबे की बिनती करी।

भगवान संकर ने पिरसन्न होकें मुनि जू सें कई कै, जो एक मईना आदमी रैहै उर एक मईना औरत। पै बसिस्ट जू ऊ खाँ हरदम के लाने आदमी बनाओ चाऊत ते सो बे अब पारबती जू की सेवा पूजा करन लगे। बसिस्ट जू की सेवा पूजा सें पिरसन्न हो कें पारबती जू ने कई कै तुम सुदुम्न के घरै जाकें भगवती सें हमाई सेवा पूजा करो उर नौ दिना देवी भागवत पुरान सुदुम्न खाँ सुनाओ। ऊ कै सुननई ओई छिन ऊ आदमी हो जैहै। सो बसिस्ट जू ने ऐसो अई करो उर सुदुम्न खाँ सदउ के लाने आदमी बना दओ।

छतरपुर मध्य प्रदेश

गाँवदारी / जितेन्द्रसिंह

गाँवन में पैलाँ सब जने काम-काज सें निपट कें अथाई पै जुरत ते। उतै रामायन, भागवात ओ गाँव की खुसी-बहाली को बतकाव होत तो। कोउ अपनी बीती बताउत, कोउ जगबीती सुनाउत तो। येई तराँ सें रोज संजा के भगवान ओ ईमान को बतकाव होत तो, पै अब जे गुजरे जमाने की बातें हो गईं। अब तो कोउ अथाई पै जुरतइ नइयाँ, कजन्त कछू जने कभऊँ आकें बैठउ गये, तो गाँवदारी की चरचामें गाँव की भलाई के लानें कोउ कछु नई बतात, हाँ आपुस की बुराई को बतकाव सो जम कें होत।

उदना कछू सुजोग हतो, सो एक साजी चरचा गाँव के बूढ़े-पुराने पंचन के बीच भई। उननें जौन कछू खट्टी-मीठी ओ नई-पुरानी बातें करीं, ऊकी तनक सी बानगी अपुन सोउ देखो और सोचो कै ऐसो काये हो रओ। उदना जब हम अथाई पै पौंचे, तो भुमानी दद्दा बता रये ते कै,—"देखौ तौ का जमानो आ गओ, पैलाँ गाँवन में कभउँ फौद्दारी लों न होत ती, पै अब देखो बन्दूकें चलन लगीं। तना-तना से लरका तमंचा खोंस कें चलन लगे। जानै कैसे हो दिमाग कै न होत की बातन में लराई करन लगे? हमाई ज्वानी में कभउँ कछू कहा-सुनी हो जात ती, तो आमूं-सामूं बतकाव करकें उरजी बात सरजा लेत ते।"

येइ बात पै रमधनियाँ दाऊ बोले,—"अरे भइया, बो जमानो हतो, जबै काउ के मन में फांस न रतती, जौन बात कानें होय, टका सी कै देत ते। गलती होय, तो सुनबे-वारे माफी माँगत ते, नई तो कैबै बारे की संका को हल कर देत ते। भइया कैसो नौनो सोने जैसो समै हतो! गाँव पुरा में चाय जीके लरका-बिटिया को ब्याव-काज होय सब पुरा-परोसी पौंचकें पूरो काम काज देखत ते, जो समजत ते के घरई को काम आय हो रओ। बिटिया के अवसर काज पै कोउ बुलाबे खाँ न परखत तो, बिनइं बुलावे जाकें पूरो कारज करत ते, मन में ई बात को उछाव होत तो के फलाने की मोड़ी को ब्याव अच्छी तराँ निपट गओ।"

इत्ते में गंगू माते नें कई--"अब ऐसो समै कां रओ जब जेठे-सयाने पुरा परोस वारे, कच्ची उमर से सब लरकन पै निधा शरवत ते ? कछू बुराई लरकन में देखत ते, सो उयै दूर करबे के सोचत औ करत ते। लकरन मानें तौ कान पकर कें दे। चार लप्पड़ लगा देत ते। आज कोउ के लरका खाँ टेंड़ो निधा सें देख तौ लेव, ऊकी मताई तुरतईं-अपने घरई सें रानेखी बारत चली आहै, भलाई लकरा खाँ अपुन नै बुरये काम के लानें खिसयाओ होय।"

"जब हम हलके हते तौ एक दार लल्लू दादा नें हमें तमाखू खातन देख लओ। फिर का हो, हमै नगीच बुला कें खूबई ठुकाई करी। हमाये घरै जाकें दद्दा सें कै आये, सो हमाये दद्दा नें हमाये कान गरम करे। जब लल्लू दादा हमाये इतै उरांनो दैबे जा रये ते, तौ उनके बड़े लरका मोहन भइया नें उनसें कई कै-'दद्दा पराये लरका खाँ काये मार दओ, कोउ कछू कांन लगे, तौ का बात रे जैहै ?' मोहन भइया की जा बात सुनकें लल्लू दादा नें तुरतईं अपनो डण्डा घुमां कें मोहन भइया की करयाई में मारो, सो बद्द उड़ो। फिर बोले के ले तें तो नइयां परओ लरका ससुर मोंय ग्यान सिखा रओ।' अब है कोउ की हिम्मत कै इत्तो सब कर लेबै ?"

इत्तां सुन परमूं माराज बोले कै —"भइया का कइये, कैसे हो गये आज के आदमियन के दिमाग। जे सैंतारा जानें काये कछू कै कछू उभेरत रत। जे नांय की मांय ओ मांय की नांय जोर कै घर बैठे लराई को पूरो मजा लेत। आज गांवन-गांवन पल्टों बंध गई तौ काये सें बंध गई। येई चुगलखोरन के मारे जौ सब हो रओ है। हमाए ढिंगा बैठे सो हमाई हाँ में हाँ मिलाउत रये, थोरी देर में तुमाये इतै गए सो तुमाई सी सटकाउन लगे। बात इत्तर होती, तो कछू जादा बिलोरान होतो, जे बातैं तौ तब जातीं, जब जे चुगली करबेंबारे नोन-मिर्चा लगा कें मनगड़ंत बातैं इतै की उतै जुझा देत। कभऊं हमसें बोले कै तुमें रमटेरा दाउ काव वे कै परम् मराज तौ जलम के मरभुखा आँय, काल लों मंजूरी करत रये आज रईस बन गए।' अब रमटेरा दाउ नें हमाये लाने जा बात कई हुइयै, सो एसो मान कें हमउँ नें रमटेरा दाऊ के लानें कछू भली बुरी बात कै दई। अब बीच बारन के लाने जझाबे को पूरो मसालो मिल गओ। हमाई कई बात खाँ वड़ा-चड़ा के रमटेरा दाऊ सें जोरी, सो बस हो गओ पूरो महाभारत ओ असलियत को पतई न चलो। येई सें कई जात कै सब काम सोच विचार कें करो चाइये नईं तौ गैर यात की वात पै लराई हो। जात परम् मराज की बात हमें ऐन साजी लगी औ हमनें सोची के येई सें तौ गुनी जन अपने गिरधर कबराय कै गये बिना बिछारे रये ते करैं, सो पाछूं पछतां।"

हम जा बात सोचाइ कै मन्नू कक्का बोले--"भइया लराई के लानें पचासन बातें होतीं, कछू एक बात होय तौ कइये। अब येइ खेत उखारबे बारन कै। पटतर लै लेव मानो हमाओ खेत को अनाज कोऊ उखार लै गओ औ हमें कोउ दूसरे के ऊपर संका हो गई, सो मनई मन हम उसें बुराई मानन लगे। येऊ से अंगाऊं कभउं मोका लगा कें ओइ को खेत उरवार ल्याये। कजन्त उयै जा बात पता चल गई ओ ना पता चली तौ कभउं ऊनें हमें ऐसो करतन देखइ लओ, तौ भइया का बातरै गई ? तनक सी बात के पछाऊं जलम भरे खाँ बुराई हो जात। एक बात जा सांऊ है कै फूलत-फरत अन्न उखार कें खबाबे सें कमऊं कोउ कें धन नईं जुरत आय, पै तम हमाओ मन नईं जुरत आय, पै तउ हमाओ मन नईं मानत। हर साल गांव में कोउ न कोउ को खेत उखरत ओ लराई होव।

हमें अथाइ पै वैठे-वैठे बिलात देर हो गई ती, पै गांवदारी की बातें कछू निनुरत ना दिखानी सो हमने सब पंचन से कई कै भइया हगो ई सब बातन को जरूरी है कये सें हम गांवन के गांव हमाये। हमै तुमैतो इतईं रांनें, ईसें गांवन की बुराइवन खों दूर करबो भोतउं जरूरी है। नईं तो ई जुग मे हमाई उन्नत अच्छी तरां सें नईं हो सकत।

--कान्ति-निकेतन, ग्योंड़ी, हमीरपुर

साहित्य-कला-संस्कृति समाचार

आदिवासी कलाप्रशिक्षण शिविर, लोकमंच, की नयी रंगचेतना, तानसेन संगीत-सधारोह साहित्यकार-समीक्षा-निशा, कालिदास-जयंती-उत्सव, मुंशी अजमेरी जन्माशताब्दी-समारोह एवं विविध सांस्कृतिक गतिविधियां।

•

आदिवासी कलाप्रशिक्षण शिविर

खजुराहो--इतिहास प्रसिद्ध विश्व सैलानियों का स्वर्ग-खजुराहो की जैन धर्मशाला के प्रांगण में म० प्र० आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा दिनांक १३ अक्टूबर से २२ अक्टूबर १९८१ तक दस दिवसीय आदिवासी कला-प्रशिक्षण-शिविर का सफल आयोजन सम्पन्न हुआ, जिसमें म० प्र० के भोपाल व सागर सम्भागों के बारह जिलों से आये ८० आदिवासी छात्रों व ५ छात्राओं ने विशिष्ट कला मर्मज्ञों और साहित्यमनीषियों से कला, साहित्य और संस्कृति की विभिन्न विधाओं का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

शिविर का समापन करते हुए राज्य के आदिमजाति कल्याण मंत्री श्री भंवरसिंह पोरते ने कहा कि विश्वविख्यात प्राचीनतम स्थल-खजुराहों में आदिवासी अंचलों में छिपी प्रतिभाओं को स्वयं की कलाओं को विकसित करने का यह अवसर मिलना और आदिवासी युवक-युवतियों को विभिन्न कला-विधाओं में पारंगत या प्रशिक्षित किया जाना एक अति महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आदिवासियों की कला लुप्त होती जा रही है, अतएव उसे व्यापक क्षेत्र मिलना ही चाहिये। आदिमजाति-कल्याण विभाग के संचालक श्री सम्पतराय ने शिविरार्थियों को संकल्प-शपथ दिलाई और श्री विष्णु पाठक के निर्देशन में शिविरार्थी छात्र-छत्राओं विविध रोचक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये, जिनका अवलोकन मंत्री सहित अनेक अधिकारियों, विदेशी पर्यटकों, गणमान्य नागरिकों तथा क्षेत्रीण ग्रामीण जनता ने किया। क्षेत्रीय विधायक श्री लक्ष्मण दास अहिरवार ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया तथा सागर-सम्भागीय उपसंचालक श्री जे० एन० टी० रमानी ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

दस दिवसीय इस आदिवासी कला प्रशिक्षण-शिविर में प्रतिभागी छात्र-छात्राओं को नृत्य एवं संगीत, रेखांकन एवं चित्रण, साहित्य, संस्कृति, कला-विषयक एक निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार कुशल एवं सुयोग्य प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण प्रदान किया गया। कुशल निर्देशन में नित्य सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए। विशेष चर्चा का विषय रहा समापन समारोह में आयोजित नृत्य-संगीत-अभिनय कला का अभिनव आयोजन, जिसमें बुन्देली लोकगीत, आदिवासी नृत्य, कठपुतली लोकनाट्य आदि कार्यक्रमों ने मँजी हुई कला का आभास देते हुए दर्शकों को मंत्र मुग्ध कर दिया। वास्तव में आदिवासी छात्र-छात्राओं को यदि उनके ही लोकनृत्य, लोकसंगीत, लोकनाट्यों आदि का प्रशिक्षण दिया जाय, तो वे उत्कृष्ट कलाकार के रूप में उभर सकेंगे।

लोकमंच की नयी रंगचेतना

भोपाल—'लोकमंच' द्वारा मॉडल स्कूल के भव्य मंच पर युवा निर्देशक विभूति झा के निर्देशन में चीन की राजनीतिक और सामाजिक क्रांन्ति पर आधारित नाटक—'फाँसन' का सफल प्रस्तुतीकरण किया गया। देवकान्त शुक्ल, मनीषा दुबे और विभूति झा का नाट्याभिनय सचमुच प्रभावशाली और सराहनीय रहा, जिसके कारण पर्याप्त गुलाबी जाड़े के बीच खुले मैदान में भी दर्शकगण विचलित नहीं हुए। इस नाट्याभिनय में निर्देशक द्वारा कण्ठध्वनि का विविधतापूर्ण प्रयोग, शारीरिक संचालन, व्यक्तिगत एवं सामूहिक अभिनय, वैचारिक भावभूमि आदि सभी प्रकार की कलाओं का प्रदर्शन सफल और सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम रहा, जो वास्तव में अति सराहनीय तो है ही, रंगकर्म का एक नया एवं अभिनव पक्ष भी प्रस्तुत करता है।

तानसेन संगीत-समारोह

ग्वालियर—हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी २८ से ३० नवम्बर, ८१ तक ग्वालियर में संगीत-सम्मेलन का त्रिदिवसीय समारोह हुआ। बाला साहब पूँछ वले कुमार गंधर्व के पुत्र मुकुल शिवपुत्र, निशाद खाँ, श्रीमती नैना देवी, ओम प्रकाश चोरसिया, श्रीमती मालिनी राजूरकर, पं० मल्लिकार्जुन मंसूर सहित अनेक संगीत-कलाकारों ने अपनी संगीत कलाओं का श्रेष्ठ प्रदर्शन किया।

साहित्यकार-समीक्षा-निशा

दमोह—जिला हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, दमोह की मासिक संगोष्ठी कार्यक्रम के अंतर्गत १४ नवम्बर, ८१ को प्रथम साहित्यकार-समीक्षा-निशा का सफल आयोजन सम्पन्न हुआ, जिसमें श्री जगमोहन प्रसाद वाजपेई 'मोहन' की काव्य-रचनाओं की समीक्षा श्री राजधर जैन 'मानस हंस' ने की। समीक्षोपरांत सम्पन्न बहस में सर्वश्री डा० छविनाथ तिवारी, राम शंकर खरे, डा० निरंजन सिंह, सुरेश कांत आदि ने भाग लेते हुए निष्कर्ष निकाला कि श्री वाजपेई जी की रचनाओं में भापायी सरलता, प्रवाहमानता प्रांजलता आदि तो है ही, मानवीय करुणा और संवेदन-शीलता का स्वर भी स्वाभाविक रूप से उभरा है। अंत में समीक्षित कवि श्री बाजपेई ने आयोजन हेतु आभार व्यक्त किया और कहा कि सजग एवं तटस्थ आलोचक रचनाकार का सृजनात्मक मार्ग दर्शन कराती है। इस गोष्ठी की अध्यक्षता की डा० छविनाथ तिवारी ने।

कालिदास-जयंती-उत्सव

झांसी—राजकीय संग्रहालय भवन में आयोजित महाकवि कालिदास-जयंती समारोह में मुख्य अतिथि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के कुलपति डा० हरवंश लाल शर्मा ने महाकवि कालिदास को विश्वसाहित्य की अमूल्य धरोहर बताते हुए कहा कि कालिदास को जो लोकप्रियता एवं ख्याति मिली है, शेक्सपियर, मिल्टन, बरनार्डशॉ आदि को भी नहीं मिल सकी। कालिदास-साहित्य पर निरंतर शोध व अनुसंधान कार्य होते रहना चाहिए। जिलाधीश श्री विजयशर्मा ने कहा कि झांसी म हुआ यह समारोह ऐतिहासिक महत्व रखता है। संग्रहालय के निर्देशक डा० एस० डी० त्रिवेदी ने महाकवि के प्रति अपनी विनत्र भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आभार व्यक्त किया।

मुंशी अजमेरी जन्मशताब्दी-समारोह

चिरगांव—गुप्तबन्धुओं की जन्मस्थली चिरगांव (झाँसी) में द्विदिवसीय मुन्शी अजमेरी जन्मशताब्दी-समारोह का उद्घाटन २३ नवम्बर '८१ को उ० प्र० के श्रम मन्त्री श्री जगदीश चन्द्र दीक्षित ने किया तथा समारोह की अध्यक्षता सूचना सचालक श्री ठाकुर प्रसाद सिंह ने की। दोनों ने ही अपने-अपने वक्तव्यों में मुंशी की साहित्य-सेवा की चर्चा करते हुए उनके अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित किये जाने पर बल दिया। मुंशी जी के पौत्र श्री विद्यासागर और गुप्तजी के पुत्र श्री उर्मिला चरण गुप्त ने अतिथिद्वय का माल्यार्पण कर अभिनन्दन किया। श्री दीक्षित ने मुन्शी जी के चित्र का अनावरण किया।

उसी दिन आयोजित कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता वयोवृद्ध कवि श्री सेवकेन्द्र त्रिपाठी ने की और संचालन किया श्री शारदा प्रसाद उदनियाँ 'मनोज' ने। कवि-सम्मेलन में सर्व श्री सोम ठाकुर, संतोष सोनकिया, गुणसागर, अजय उर्मिल, सूर्यकांत, रजनीश, श्याम शाकिल्ले, राम मोहन शर्मा, मनोज, सुरेश-पराग, विकल उत्साही, किरण भारती, सुशील शास्त्री, बालकवि सुधाकर, लोकेन्द्र सिंह नागर, महेश पंडित, ज्ञान रामपुरी, रवीन्द्र एवं सेवकेन्द्र त्रिपाठी आदि ने काव्यपाठ कर श्रोताओं को बांधे रक्खा।

२४ नवम्बर, ८१ को श्री किशोरी लाल गुप्त की अध्यक्षता और डा० गंगाप्रसाद गुप्त बरसैया के संचालन में साहित्य-गोष्ठी एवं परिचर्चा सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई जिसमें सर्वश्री (श्रीमती) पुष्पलता निगम, वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', महेन्द्र कुमार मानव लोकेन्द्रसिंह 'नागर', जगदीश किंजल्क, रामचरण हयारण 'मित्र', सेवकेन्द्र त्रिपाठी, सियाराम शरण शर्मा, विद्यासागर सुधाकर आदि वक्ताओं ने मुन्शी अजमेरी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आलेख पढ़े तथा विचार व्यक्त किये। मुख्य अतिथि डा० हरवंश लाल शर्मा कुलपति बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी ने कहा कि विश्वविद्यलय मुंशी जी पर शोध करने हेतु भरसक योगदान देगा। रात्रि में आयोजित संगीत-सम्मेलन के साथ समारोह का समापन हुआ।

विविध साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियां

छतरपुर—बुन्देलखण्ड का हृदयस्थल, वन-धसान नदियों के बीच अवस्थित संस्कारधानी छतरपुर में नवदुर्गाष्टमी विजयादशमी तथा दीपावली पर्वों मध्यकाल में हर वर्ष की भांति सुमनोहर झांकियों, रामलीलाओं, रावण-पुतला दहन आदि सहित विविध साहित्यक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों का सफल आयोजन हुआ जलविहार-मेला व प्रदर्शनियाँ संयोजित हुई। राज्य परिवहन निगम की की छतरपुर डिपो तथा नगरपालिका द्वारा आयोजित लोक संगीत-साहित्य-कला-संस्कृति-विषयक विभिन्न कार्यक्रमों स दौरान सम्पन्न कवि-सम्मेलनों की अध्यक्षता राजनेताओं द्वारा कराई जाना विशेष चर्चित रहा। इन सम्मेलनों में पठित रचनायें भी साहित्यिक-रचनात्मक कम,र ाजनीतिक अधिक रहीं सुकवियों द्वारा अग्रिम पारिश्रमिक लेकर भी न आना अति दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायेगा।

[साहित्य-कला-संस्कृति सम्बन्धी अपने क्षेत्र के समाचार, टिप्पणियां एवं रपट भेजने के लिये जागरूक समीक्षकों, आयोजकों एवं साहित्यकारों से अनुरोध है। तटस्थ टिप्पणियों को प्राथमिकता दी जाएगी।—सम्पादक] ☐